उन्नत कृषि

जनवरी - मार्च, 2022

आज़ादी का अमृत महोत्सव

भारत सरकार

कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय

कृषि एवं किसान कल्याण विभाग

विस्तार निदेशालय

उन्नत कृषि

वर्ष 55 | अंक 1 | जनवरी – मार्च 2022

विषय सूची

कृषिवानिकी : भूमि उपयोग बढ़ाने का सशक्त माध्यम 4

आर. पी. द्विवेदी, प्रियंका सिंह, सुशील कुमार एवं ए. अरूणाचलम

सब्जियों में समेकित खरपतवार प्रबंधन का महत्व 7

पी.के. सिंह, वी.के. चौधरी, चेतन सी.आर., आर.पी. दुबे एवं जे.एस.मिश्र

तेल ताड़ में सिंचाई प्रबंधन 13

डा. एम.वी. प्रसाद, डा. के. मनोरमा एवं डा. आर.के. माथुर

सौंफ की फसल से अर्थव्यवस्था में सुधार 17

डॉ दिलीप सिंह

जैविक खेती के लाभ व खाद निर्माण की विधियाँ 20

डॉ. विनोद कुमार

कृषकों के खेतों पर विभिन्न फसल पद्धतियों के प्रक्षेत्र परीक्षणों का अध्ययन 22

डॉ.रवि यादव, रवि सिंह गुर्जर, डॉ. वाई. पी. सिंह, डॉ. सन्दीप सिंह तोमर, डॉ. जे. सी. गुप्ता एवं दीपेन्द्र शर्मा

पशुओं में गलघोटू रोग 27

डॉ सूदीप सोलंकी एवं डॉ कमल पुरोहित

स्वरोजगार के लिए एक्वेरियम में सजावटी मछलियों की रंग-बिरंगी प्रजातियाँ 29

मोती लाल मीणा, इप्सिता विश्वास एवं मधु सुदन कुन्डू

संपादकीय मंडल

डा. वाई. आर. मीना
अपर आयुक्त (विस्तार)

सुधीर कुमार
संयुक्त निदेशक (कृषि सूचना)

डा. संजय कुमार जोशी
सहायक संपादक

कला पक्ष

एस. एस. नेगी
मुख्य कलाकार

आनन्द
वरिष्ठ कलाकार

पत्र व्यवहार का पता

संयुक्त निदेशक (कृषि सूचना)
उन्नत कृषि
विस्तार निदेशालय
कृषि, एवं किसान कल्याण विभाग
कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार
कृषि विस्तार सदन, पूसा, नई दिल्ली–110012
ईमेल: editor.intensive@gmail.com

पत्रिका में दिये गए विचार विस्तार निदेशालय, कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार के नहीं अपितु लेखकों के हैं।

संपादकीय.....

देश में कृषि उत्पादन के लिए लगातार रासायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशकों का उपयोग किया जा रहा है। निरन्तर इन रासायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशकों के प्रयोग से सीमान्त एवं छोटे किसानों की फसल निवेश में वृद्धि हो रही है। कृषि में मृदा स्वास्थ्य एवं वातावरण पर इसका प्रतिकूल प्रभाव किसी से छिपा नहीं है। कृषि उत्पाद में औसत से अधिक रासायनिक तत्वों के मिलने पर अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर कृषि उत्पाद को बेच पाना संभव नहीं रह गया है। कृषि उत्पाद में रासायनिक तत्वों की अधिक मात्रा होने के कारण मानव स्वास्थ्य पर संकट आ गया है। लगातार मनुष्य के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल असर चिंतनीय है। कृषि एवं मानव के बीच स्थापित सामंजस्य अब असंतुलित हो चुका है। गांवों में गाय, भैंस, बैल के पालन व उपयोग में कमी देखी जा रही है। यह घटक भी काफी हद तक बदलते परिवेश के लिए जिम्मेदार है। कृषि और किसान के बीच संतुलन की यह निरंतर चलने वाली कड़ी अब क्षीर्ण हो चुकी है।

रासायनिक तत्वों के उपयोग ने सतही भूमि व भूमिगत जल को प्रदूषित किया है। अंधाधुंध रसायनों के उपयोग ने फसलों पर रोग और नाशीजीवों के प्रभाव को बढ़ाया है। परिणामस्वरूप मृदा में जीवांश और पोषक तत्वों का अभाव पाया जा रहा है। बदलते परिवेश में मृदा में रासायनिक तत्वों और नाइट्रोजन की कमी देखी जाती है।

भारत सरकार, कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय ने इन समस्याओं की गंभीरता को समझते हुए कई प्रकार के ठोस एवं प्रभावी कदम मृदा स्वास्थ्य को बेहतर रखने के लिए उठाए हैं। यह कदम टिकाऊ खेती के साथ–साथ उत्पादकता की निरंतरता को बनाये रखने में युक्तिसंगत है। टिकाऊ खेती को ही जैविक खेती के रूप में प्रतिपादित किया जाता है। मृदा में हयूमस और मृदा संरचना में उत्तरोत्तर सुधार करते हुए उर्वराशक्ति में वृद्धि करना जैविक खेती का आधार है। उर्वराशक्ति के बढ़ने पर उत्पादन में वृद्धि स्वाभाविक है। इससे मृदा की जलधारण क्षमता में वृद्धि और मृदा की ऊपरी सतह पर नमी बनाये रखने की क्षमता में बढ़ोत्तरी देखी जाती है। ऐसी पद्धति को अपनाने से फसलों की सिंचाई की आवश्यकता में कमी देखी गई है।

जैविक खेती से प्रदूषण में कमी तथा पर्यावरण का शुद्ध होना स्वाभाविक है। जैविक खेती से जानवर, पशु, पक्षी एवं सूक्ष्म जीवाणुओं का जीवन चक्र पुनः स्थापित हो जाता है जो वातावरण को शुद्ध व खेती अनुकूल करने में सहायता करते हैं। विपणन की दृष्टि से किसानों को जैविक उत्पाद के दाम अधिक प्राप्त होते है तथा ये उत्पाद मानव स्वास्थ्य के लिए लाभकारी हैं। अतः इसकी मांग दिनों दिन बढ़ रही है। कई प्रकार के रोगों से लोगों को बचाने में भी जैविक उत्पाद सहायक हैं। रासायनिक खाद पर निर्भरता कम होने पर फसल निवेश में भी कमी आती है।

देश के प्रबुद्ध कृषि वैज्ञानिकों ने बताया है कि अब जैविक खेती की प्राथमिकता बढ़ रही है। इस दिशा में सभी किसान कंधे से कंधा मिलाकर चलें और स्वच्छ, स्वस्थ, खुशहाल, आत्मनिर्भर भारत निर्माण में अपना योगदान दें।

आओ हम संकल्प लें कि जैविक खेती को अपनाने और स्वच्छ, स्वस्थ, खुशहाल, आत्मनिर्भर भारत बनाने में अपनी क्षमतानुरूप कदम बढ़ायेंगे।

सुधीर कुमार

कृषिवानिकी : भूमि उपयोग बढ़ाने का सशक्त माध्यम

आर. पी. द्विवेदी, प्रियंका सिंह, सुशील कुमार एवं ए. अरूणाचलम
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद–केन्द्रीय कृषिवानिकी अनुसंधान संस्थान, झाँसी – 284003 (उ.प्र.)

देश की जनसंख्या के साथ–साथ पशुधन की संख्या भी तेज गति से बढ़ रही है। परिणामस्वरूप देश के भू–भाग का क्षेत्रफल स्थिर होने के कारण प्रति वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में पशुधन एवं मनुष्यों की आबादी का दबाव दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। वर्तमान में कृषि योग्य भूमि को आवास के लिए इस्तेमाल किया जाने लगा है। अब हमारा पर्यावरण भी प्रभावित हो रहा है।

ऐसी दशा में अब ऐसी जमीन बचती है जिस पर या तो किसी कारण से खेती नहीं कर सकते या वह भूमि खेती योग्य नहीं है। अतः ऐसी बेकार पड़ी हुई भूमि को हमें उपयोग में लाना है जिसे अन्न, लकड़ी, चारा एवं अन्य जरूरतों के लिए उपयोग में ला सकें। इसके लिए कृषिवानिकी एक वरदान के रूप में सिद्ध हुई है। कृषिवानिकी पद्धति को अपनाकर देश में बेकार पड़ी हुई जमीन का उपयोग भली–भॉति कर सकते हैं। इस प्रणाली के द्वारा किसान अपने ही खेत से विभिन्न प्रकार की आवश्यकता की वस्तुएँ जैसे इमारती लकड़ी, ईंधन, कृषि यंत्र के लिए लकड़ी, हरा चारा, रेशम, शहद, अन्न, फल तथा कुटीर उद्योग हेतु कच्चा माल आदि प्राप्त कर सकता है।

कृषिवानिकी पद्धति से नत्रजन (नाइट्रोजन) स्थिर करने वाले पेड़ों जैसे सुबबूल, अंजन, शीशम, सिरस, नीम, बबूल आदि को लगाकर भूमि की उपजाऊ शक्ति को बढ़ाया जा सकता है। दलहनी फसलों एवं वृक्षों की पत्तियों के द्वारा जीवांश पदार्थ को अधिक से अधिक मात्रा में भूमि में मिलाकर उर्वराशक्ति में वृद्धि की जा सकती है। इसके साथ ही साथ रासायनिक खाद की मात्रा को कम किया जा सकता है। कृषिवानिकी पद्धति से भूमि का उपयोग बढ़ जाता है तथा फसल उत्पादन में होने वाले जोखिम घटते जाते हैं।

कृषिवानिकी क्या है

कृषिवानिकी जमीन के प्रबंधन की ऐसी पद्धति है जिसके

कृषक प्रक्षेत्र में आंवला आधारित कृषिवानिकी

अंतर्गत एक ही भू–खण्ड पर कृषि फसलों और बहुउद्देशीय पेड़ों/झाड़ियों के उत्पादन के साथ–साथ पशुपालन भी किया जाता है। कृषिवानिकी पद्धति से जमीन की उपजाऊ शक्ति को बढ़ाया जाता है। सीधे शब्दों में फसलों के साथ वृक्ष (फलदार, इमारती, ईंधन एवं चारा प्रदान करने वाले) उगाने तथा साथ में पशुपालन करने की पद्धति को कृषिवानिकी कहते हैं।

वृक्ष + फसल + पशुपालन = कृषिवानिकी

कृषिवानिकी के मुख्य उद्देश्य :

- कृषि उत्पादन को सुनिश्चित करना एवं खाद्यान्न को बढ़ाना
- मृदाक्षरण में नियंत्रण
- भूमि सुधार
- ईंधन एवं इमारती लकड़ी की आपूर्ति करना

- कुटीर उद्योगों को बढ़ाने के लिए अधिक साधन जुटाना एवं रोजगार के अधिक अवसर प्रदान करना
- पर्यावरण की सुरक्षा
- पशुओं के लिए साल भर अच्छे गुणों वाले चारे प्रदान कर उनकी उत्पादन क्षमता को बढ़ाना
- ऊसर एवं बीहड़ भूमि का सुधार करना
- फलों के उत्पादन को बढ़ाना
- जलाऊ लकड़ी की आपूर्ति करके गोबर को ईंधन के रूप में प्रयोग करने से रोकना तथा इसे खाद के रूप में उपयोग करना

उपरोक्त उद्देश्यों को ध्यान में रखकर भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद ने देश के विभिन्न जलवायु वाले क्षेत्रों में कृषिवानिकी पर अनुसंधान करने के लिए अखिल भारतीय समन्वित अनुसंधान परियोजना की शुरूआत सन् 1983 में की। इस परियोजना के अन्तर्गत आजकल 37 अनुसंधान केन्द्र हैं जो भा.कृ.अनु.परि. के 10 विभिन्न संस्थानों एवं राज्यों के कृषि विश्वविद्यालयों में अनुसंधान कार्य कर रहे हैं। इसके अलावा मई,1988 में राष्ट्रीय कृषिवानिकी अनुसंधान केन्द्र की स्थापना झाँसी में हुई। इस संस्थान द्वारा कृषिवानिकी में अनुसंधान, प्रशिक्षण तथा प्रसार कार्य किया जा रहा है।

कृषिवानिकी पद्धतियाँ

कृषिवानिकी की हमारे देश में निम्नलिखित प्रमुख पद्धतियॉ प्रचलित हैं। किसान बन्धु अपनी सुविधा के अनुसार पद्धतियाँ अपना सकते हैं।

1. कृषि–वन पद्धति : इस पद्धति में कृषि फसलों के साथ–साथ चारा, ईंधन, इमारती लकड़ी देने वाले पेड़ों को लगाते हैं।

2. कृषि –उद्यानिकी पद्धति : इस पद्धति में कृषि फसलों के साथ फलदार पेड़ों को लगाते हैं।

3. कृषि–वन–उद्यानिकी पद्धति : इसमें फसलों के साथ–साथ फलदार तथा चारा, ईंधन, इमारती लकड़ी प्रदान करने वाले वृक्षों को उगाया जाता है।

4. वन–चारागाह पद्धति : इस पद्धति में चारा प्रदान करने वाली घासों, दलहनी चारों के साथ–साथ वृक्षों को लगाते हैं। यह पद्धति ऐसी जमीन पर करते हैं जहॉ खेती (फसलें) नहीं की जा सकती हो।

5. उद्यानिकी–चारागाह पद्धति : इसमें चारा प्रदान करने वाली घासों के साथ–साथ फलदार वृक्षों को लगाते हैं। इसी पद्धति को बेकार पड़ी जमीन पर अपनाते हैं।

6. कृषि–वन–चारागाह पद्धति : इस पद्धति में खेती योग्य जमीन में वृक्षों के साथ–साथ जमीन के कुछ हिस्सों में कृषि फसलें तथा कुछ भाग में चारा वाली घासों को लगाते हैं।

7. कृषि–उद्यानिकी–चारागाह पद्धति : इस पद्धति में खेती योग्य जमीन में फलदार वृक्षों के साथ–साथ कृषि फसलें तथा जमीन के कुछ हिस्सों में चारा प्रदान करने वाली घासों को लगाते हैं।

8. मेड़ वृक्षारोपण : इस पद्धति में खेती योग्य जमीन पर खेत के चारों तरफ वृक्षों को लगाते हैं।

कृषिवानिकी में लगाये जाने वाले वृक्षों के गुण –

1. वृक्षों की बढ़वार तेजी से हो।
2. बार–बार कटाई–छॅटाई की सहन शक्ति हो।
3. पेड़ों की जड़ें गहरी जाने वाली हों, जिससे फसलों एवं पेड़ों को पोषक तत्व प्राप्त करने में स्पर्धा न हो।
4. वृक्ष का फैलाव कम हो जिससे फसलों के ऊपर छाया का असर कम पड़े।
5. पेड़ में शाखायें कम निकलती हों।
6. पेड़ों का पतझड़ ऐसे समय में हो कि फसल के ऊपर हानिकारक प्रभाव न पड़े।
7. पत्तियॉ जमीन में गिरने के बाद मिट्टी में जल्दी सड़ जायें।
8. पेड़ वायुमण्डलीय नाइट्रोजन (नत्रजन) स्थिर करने

कृषक प्रक्षेत्र में बेर आधारित कृषिवानिकी एवं मेड़ पर यूकेलिप्टस

वाले हों जिससे भूमि की उर्वराशक्ति में वृद्धि हो सके।

9. **घर के आस–पास कृषिवानिकी :** यह पद्धति हमारे देश के केरल, उड़ीसा आदि राज्यों में प्रचलित है। इस पद्धति में घर के आस–पास पेड़ (ईंधन, फल, चारा आदि), फूल, औषधि, सब्जी, मसाला आदि वाले पौधे साथ–साथ लगाते हैं जिससे अनेक प्रकार की जरूरतों की पूर्ति होती है।

10. पेड़ों की पत्तियों में पौष्टिक तत्व अधिक हो जिसे जानवर खायें।

11. वृक्षों का चुनाव करते समय यह भी ध्यान रखना चाहिए कि उस क्षेत्र की सामाजिक, आर्थिक एवं पर्यावरणीय आवश्यकता की पूर्ति करने वाले हों।

पोपलर आधारित कृषिवानिकी

आत्मनिर्भरता एवं आमदनी बढ़ाने में कृषिवानिकी का योगदान –

वैज्ञानिकों द्वारा कृषकों के खेत में शोध द्वारा पाया गया कि अमरूद–मूँगफली–गेहूँ, एवं अमरूद–मूँगफली–जौ कृषिवानिकी प्रणाली में चौथे वर्ष से कृषक को केवल फसल द्वारा होने वाली आय की तुलना में 20 प्रतिशत अधिक आमदनी प्राप्त होती है जो कि उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है। कृषिवानिकी प्रबंधन से किसानों को स्वरोजगार के साधन प्राप्त होते हैं जिससे उनमें आत्मनिर्भरता आती है। कृषिवानिकी से साल भर कुछ न कुछ कार्य मिलता रहता है। जैसे पौधशाला की देख–रेख, पौधरोपण, कलम बाँधना, निराई–गुड़ाई, रोग तथा कीड़े से बचाव हेतु दवा का छिड़काव, फलों की तुड़ाई, डिब्बाबंदी, बाजार में विपणन, गड्ढे खोदना, गोबर तथा कम्पोस्ट खाद गड्ढों में डालना, गोंद, छाल तथा ईंधन की लकड़ी इकट्ठा करना आदि। इस तरह कृषिवानिकी से स्वरोजगार के साधन प्राप्त होते हैं। इसके साथ–साथ कुटीर उद्योगों के लिए कच्चे माल की आपूर्ति भी किसानों द्वारा की जाती है जिससे उनमें आत्मनिर्भरता प्राप्त होती है। इस प्रकार कृषिवानिकी के प्रबंधन में किसानों के खाली समय को उपयोग में लाया जा सकता है।

सन् 2014 में **राष्ट्रीय कृषिवानिकी नीति–2014** अपनाकर भारत विश्व का पहला देश बन गया है। भारत सरकार ने विश्व में पहली बार कृषिवानिकी विकास हेतु दृढ़ संकल्प प्रस्तुत कर अग्रणी भूमिका निभायी है। केन्द्रीय कृषिवानिकी अनुसंधान संस्थान, झाँसी का राष्ट्रीय कृषिवानिकी नीति के दस्तावेज तैयार करने में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। **राष्ट्रीय कृषिवानिकी नीति–2014** के अन्तर्गत कृषकों को कृषिवानिकी अपनाने हेतु प्रोत्साहन कार्यक्रम, गुणवत्तायुक्त पौध उपलब्ध कराना, प्रशिक्षण एवं कौशल विकास के माध्यम से क्षमता निर्माण तथा कृषिवानिकी प्रचार–प्रसार पर विशेष रूप से कार्य किया गया है।

वर्तमान में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद –केन्द्रीय कृषिवानिकी अनुसंधान संस्थान, झाँसी द्वारा भारत के विभिन्न राज्यों को कृषिवानिकी नीति को क्रियान्वयन करने में सहायता प्रदान की जा रही है जिससे किसानों को भूमि उपयोग बढ़ाने के साथ कृषिवानिकी से लाभ मिले।

सब्जियों में समेकित खरपतवार प्रबंधन का महत्व

पी.के. सिंह, वी.के. चौधरी, चेतन सी.आर., आर.पी. दुबे एवं जे.एस.मिश्र

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद–खरपतवार अनुसंधान निदेशालय, जबलपुर (म.प्र.)

हमारे देश में सब्जियों की खेती वर्ष भर की जाती है। सब्जी उत्पादन की उन्नत तकनीक का प्रयोग करने के बावजूद कृषक ज्यादा पैदावार नहीं ले पा रहा है, इसका प्रमुख कारण सब्जियों में उगने वाले खरपतवारों का प्रकोप है जो नर्सरी से लेकर पूरी सब्जी तुड़ाई तक हानि पहुंचाते हैं तथा सब्जी उत्पादन में न केवल भारी कमी बल्कि उनकी गुणवत्ता को भी खराब कर देते हैं। मौसम के अनुसार खरपतवारों की प्रजाति और संख्या में भी विभिन्नता पायी जाती है। खरीफ मौसम में अन्य मौसम की तुलना में खरपतवारों का प्रकोप ज्यादा होता है। अतएव यह आवश्यक है कि इन खरपतवारों का समय पर उचित विधि से प्रभावी नियंत्रण करके सब्जी फसलों को इनके कुप्रभाव से बचाते हुए उत्पादन और गुणवत्ता को बढ़ाया जाये।

भारत में 10.8 मिलियन हैक्टेयर क्षेत्र में लगभग 60 प्रकार की सब्जियों की खेती की जाती है, जिससे लगभग 196.3 मिलियन टन सब्जी उपलब्ध हो रही है (द्वितीय एडवांस इस्टीमेट वर्ष 2020–2021)। विश्व के सब्जी उत्पादक देशों में भारत का दूसरा स्थान हैं। सब्जियां मानव भोजन का एक अति महत्वपूर्ण हिस्सा हैं क्योंकि इनसे विटामिन, खनिज, और अन्य आवश्यक पोषक तत्व प्राप्त होते हैं। सब्जी उत्पादन, किसानों के लिए एक लाभकारी व्यवसाय है। यह ज्यादा लागत वाली खेती मानी जाती है क्योंकि इसमें ज्यादा संसाधनों (पानी, जैविक और रासायनिक खाद, और अन्य संसाधन) की आवश्यकता होती है। ज्यादा संसाधनों की वजह से सब्जियों में खरपतवार की समस्या भी गंभीर होती है विशेष रूप से चौड़ी पत्ती और संकरी पत्ती वाले खरपतवारों से सब्जी उत्पादन क्षमता बुरी तरह प्रभावित होती है। अगर यह कहा जाये तो अतिश्योक्ति नहीं होगी कि सब्जियों के उत्पादन में खरपतवार एक बड़ा अवरोध है। सब्जियों में खरपतवारों के प्रकोप का स्तर, प्रक्षेत्र और मौसम के हिसाब से अलग–अलग जलवायु, फसल पद्धति के अनुसार बदलता रहता है।

खरपतवारों से प्रमुख हानियां

अधिकतर सब्जियों में कतार की दूरी अधिक होने के कारण खाली स्थानों में खरपतवार अधिक संख्या मे उग आते है। खरपतवारों को यदि उचित समय पर नियंत्रित नहीं किया जाये तो यह सब्जियों की उपज और गुणवत्ता को बुरी तरह प्रभावित करते हैं। सब्जी बीज उत्पादन में ये खरपतवार न केवल उपज कम करते हैं बल्कि सब्जियों के बीजों के साथ खरपतवारों के बीज मिलकर उसकी गुणवत्ता को भी खराब कर देते हैं, जिससे उनका मूल्य प्रभावित होता है। खरपतवारों के प्रकार, प्रकोप का स्तर, अवधि फसलों की

खरपतवारों की वजह से उपज में कमी

फसल	(उपज में कमी)	क्रांतिक अवस्था (बुआई के बाद)
आलू	20–50 प्रतिशत	20–40 दिन
मटर	25–40 प्रतिशत	30–45 दिन
गाजर/मूली	30–60 प्रतिशत	15–20 दिन
प्याज/लहसुन	50–70 प्रतिशत	30–70 दिन
टमाटर	40–70 प्रतिशत	30–45 दिन
फूल गोभी/पत्ता गोभी	50–65 प्रतिशत	30–45 दिन
मिर्च	50–70 प्रतिशत	30–45 दिन
राजमा	60–70 प्रतिशत	40–60 दिन
भिण्डी	50–60 प्रतिशत	15–30 दिन
बैंगन	60–75 प्रतिशत	20–60 दिन
लोबिया	40–50 प्रतिशत	15–30 दिन

प्रतिरोधक क्षमता और जलवायु जो कि फसल की बढ़वार और खरपतवारों को प्रभावित करते हैं। इनके आधार पर किये गए शोध अध्ययन से यह पाया गया है कि इससे सब्जियों की आर्थिक उपज में काफी नुकसान होता है।

खरपतवार न केवल मुख्य फसल के साथ पानी, प्रकाश, स्थान और पोषक तत्वों के लिए प्रतिस्पर्धा करके उनकी बढ़वार और उत्पादन क्षमता को प्रभावित करते हैं, बल्कि कीटों और बीमारियों को भी आश्रय देते हैं और उनके लिए वैकल्पिक पोषण का कार्य करते हैं।

फसल–खरपतवार प्रतिस्पर्धा का क्रांतिक समय

मुख्यतः ज्यादातर सब्जी वाली फसलों की शुरूआती बढ़वार की गति काफी धीमी तथा उनमें खरपतवारों से प्रतिरोध की क्षमता भी कम होती है। ऐसे क्रांतिक समय में फसलों को खरपतवार के प्रकोप से बचाना अति आवश्यक होता है, क्योंकि इस समय हुआ नुकसान फसल की बढ़वार और उत्पादन दोनों को प्रभावित करता है।

सब्जियों के खरपतवार एवं उनका प्रबंधन

मौसम के अनुसार अनेक प्रकार के खरपतवार प्रमुख रूप से विभिन्न सब्जी फसलों में उगते हैं। परंपरागत खरपतवार प्रबंधन तरीका (हाथ से निराई) वर्तमान परिवेश में काफी खर्चीला और समय लेने वाला होने के कारण विशेष परेशानी का कारण बनता जा रहा है। अतः आवश्यकता है कि उन्नत खरपतवारनाशियों, यांत्रिक और कर्षण विधि के समन्वय से समन्वित खरपतवार नियंत्रण पद्धति को अपनाया जाये जिससे खर्च और समय दोनों की बचत हो तथा खरपतवारों का नियंत्रण सही समय पर उचित तरीके से हो सके।

सुरक्षात्मक विधि

सुरक्षात्मक विधि खरपतवार नियंत्रण की प्रभावी, ज्यादा सरल और सस्ती विधि है। इस पद्धति को अपनाने से फसलों में खरपतवारों का प्रकोप कम होता है। इसके लिए अनेक उपाय किये जा सकते हैं :

1. खरपतवार मुक्त शुद्ध और प्रमाणित बीज/पौध का प्रयोग
2. गोबर व कम्पोस्ट खाद पूर्ण रूप से सड़ी हो तभी उसका प्रयोग करें अन्यथा इससे सबसे ज्यादा मात्रा में खरपतवार बीजों के खेत में आने की संभावना रहती है
3. कृषि यंत्रों द्वारा मिट्टी एक खेत से दूसरे में आने की संभावना रहती है। अतः कृषि यंत्रों को खेतो में उपयोग से पूर्व साफ कर लें
4. खरपतवार ग्रसित क्षेत्र की मिट्टी दूसरे खेत में डालने से बचें
5. नर्सरी के स्थान को खरपतवार मुक्त रखें
6. खेत के आस–पास की मेड़ों, पानी के स्त्रोत व नालियों को खरपतवार मुक्त रखें
7. जानवरों को खरपतवार प्रभावित क्षेत्र से नियंत्रित क्षेत्र में जाने से रोकें

सस्य विधि

स्टेल सीड बेड विधि

इसमें सब्जियों के खेत को बुआई/रोपाई हेतु 15–20 दिन पूर्व तैयार किया जाता है। 7 से 10 दिन बाद उपयुक्त नमी और तापमान रहने पर काफी मात्रा में खरपतवार खेतों में निकल आते हैं जिन्हें हल्की जुताई से सफलतापूर्वक नष्ट कर दिया जाता है तथा उसके पश्चात् बुआई अथवा रोपाई कर काफी हद तक सब्जियों में खरपतवारों को नियंत्रित किया जा सकता है।

खेत की तैयारी

सब्जी उत्पादन हेतु खेत की तैयारी से पूर्व उसमें पहले के वर्षों में उगने वाले खरपतवारों का ज्ञान आवश्यक होता है क्योंकि उसी के अनुरूप खेत की तैयारी की जाती है। यदि पूर्व के वर्षों में खेत में बहुवर्षीय खरपतवारों का प्रकोप ज्यादा रहा हो तो गहरी जुताई आवश्यक होती है, जिससे उनकी जड़ें और राइजोम/कंद टूट और उखड़कर ऊपर आ जायें जिसे इकट्ठा कर नष्ट कर दें तथा कुछ धूप से स्वतः नष्ट हो जाती हैं।

यदि वार्षिक/मौसमी खरपतवार का प्रकोप पूर्व में ज्यादा रहा हो तो कम गहरी जुताई कर सब्जियों के बीज/पौध की सतह पर बुआई/रोपाई कर खरपतवार का प्रकोप कम किया जा सकता है।

फसल चक्र

उचित फसल चक्र अपनाकर भी काफी हद तक सब्जियों में खरपतवार के प्रकोप को कम किया जा सकता है जैसे कम अवधि की पत्ती वाली फसलों को समेकित कर खरपतवारों के प्रकोप को कम किया जा सकता है। साथ ही साथ प्रतिस्पर्धी

खरीफ एवं रबी में उगने वाले खरपतवार			
खरीफ		**रबी**	
सामान्य नाम	**वैज्ञानिक नाम**	**सामान्य नाम**	**वैज्ञानिक नाम**
जंगली चौलाई	*अमरैन्थस विरिडिस*	वन प्याजी	*ऐस्फोडिलस टेनुफोलियस*
बनरा	*सिटैरिया ग्लाऊका*	कृष्ण नील	*एनागेलिस अरवेन्सिस*
महकवा	*एजिरेट्म कोनिज्याइडस*	बथुआ	*चिनोपोडियम अल्बम*
सिगनल घास	*ब्राइकेरिया इरूसिफार्मिस*	हिरनखुरी	*कानवोल्वुलस अरवेन्सिस*
मोथा	*साइप्रस रोटेन्डस*	दूबघास	*साइनोडान डाक्टीलान*
कनी / कनकवा	*कोमैलीना बेन्घालेन्सिस*	मोथा	*साइप्रस रोटेन्डस*
सफेद मुर्ग	*सेलोसिया एरजेन्सिया*	जंगली लूसर्न	*कोरोनोपस डिडिमस*
दूब	*साइनोडान डेक्टीलान*	दुधी	*यूफोर्बिया हिरटा*
क्रेब घास	*डिजिटेरिया प्रजाति*	बनमटरी	*लैथाइरस अफाका*
मकराघास	*डैक्टीलोक्टेनियम एजिपटियम*	सेंजी पीली / सफेद	*मेलिलोट्स इण्डिका / एल्बा*
लहसुआ	*डाइजरा अरकेन्सिस*	बंदा	*ओरोबेंकी* स्प.
संवा	*इकाइनोक्लोवा कोलाना*	जंगली पालक	*रूमैक्स डेंटेटस*
कोदो	*इल्युसिन इण्डिका*	चिकोरी	*चिकोरियम इन्टाइबस*
पचकोटा	*फैजालिस मिनिमा*	अकरी	*विसिया* प्रजाति
हजारदाना	*फाइलेन्थस निरूरी*	जंगली जई	*एविना फेटुआ / लुडोविसियाना*
पथरचटा	*ट्राइएन्थिमा पोरटुलाकेस्ट्रम*	अमरबेल	*कस्कुटा* प्रजाति
		बनसोया	*फ्यूमैरिया पर्वीफ्लोरा*

फसलें मक्का, ज्वार/बाजरा इत्यादि जैसे घनी फसलें या तेजी से बढ़ने वाली दलहन फसलें जो कि बुआई के 30–45 दिन में काफी फैल जाती हैं, के समन्वयन से फसल चक्र बनाकर सब्जियों की खेती करने से खरपतवार कम आते हैं। यदि फसल चक्र दो से तीन वर्ष लगातार बनाये रखें तो यह पाया गया है कि खरपतवार काफी हद तक नियंत्रित हो जाते हैं।

यांत्रिक विधि

हाथ द्वारा निराई करना कठिन और खर्चीला होता है और सब्जियों में निराई अन्य फसलों की अपेक्षा कई बार करनी पड़ती है। औसतन एक हैक्टेयर क्षेत्र के लिए 40–50 मजदूरों की आवश्यकता एक बार की निराई हेतु होती है। सब्जियों में सामान्यतया दो निराई की आवश्यकता होती है, परन्तु कुछ सब्जियों में जैसे मिर्च, टमाटर, प्याज और लहसुन में तो 3–4 निराई की आवश्यकता पड़ती है। अतः ऐसी परिस्थिति मे कतारों मे बोई गई सब्जियों में हाथ से चलाने वाले नीदा यंत्रों (ढ़केलकर/खींचकर चलाने वाले) का प्रयोग कम खर्चीला और समय/श्रम की बचत करने वाली विधि साबित हुई है, परन्तु इसमें कन्द/जड़ वाली सब्जियों (मूली, गाजर, प्याज, लहसुन) को नुकसान होने (कट लगने) का भी डर रहता है।

सिंचाई पद्धति

नालियों द्वारा सिंचाई करने की तुलना में ड्रिप पद्धति द्वारा सिंचाई किये गये क्षेत्रों में खरपतवारों की संख्या कम पायी जाती है। ड्रिप पद्धति में फसल की जड़ों के नजदीक नमी ज्यादा होने से उन जगहों पर खरपतवारों की संख्या थोड़ी ज्यादा होती है परन्तु अन्य क्षेत्रों में खरपतवार कम उगते है। बुआई के तुरंत बाद सिंचाई करने की तुलना में फसल बोने से पूर्व की गई सिंचाई भी ज्यादा लाभप्रद होती है क्योंकि बुआई पूर्व की गई सिंचाई से नमी के कारण उगने वाले खरपतवारों को खरपतवारनाशी की मदद से अथवा जुताई करके नष्ट किया जा सकता है और फिर बुआई/रोपाई की जा सकती है जिससे खरपतवार का प्रकोप कम हो जाता है।

मल्चिंग

विभिन्न शोध परीक्षणों से यह पाया गया है कि प्लास्टिक

फिल्म, सूखा चारा और फसलों के अवशेष दो कतारों के बीच फैलाने से नमी बनाये रखने, मृदा तापमान नियंत्रित करने में लाभ होता है तथा साथ–साथ खरपतवारों के प्रकोप भी काफी कम होते हैं। इसके लिए चारा अथवा फसल अवशेषों को छोटे टुकड़ों में काटकर दो कतारों के बीच खरपतवार उगने से पूर्व फैला दिया जाता है, लेकिन यह भी पाया गया है कि कुछ खरपतवार जैसे मोथा इत्यादि फिर भी निकल आते हैं जिसके लिए हाथ से निराई अथवा खरपतवारनाशी रसायन का प्रयोग करना पड़ता है।

मृदा सूर्यीकरण

इस विधि में नमीदार भूमि के सतह पर पतली पारदर्शी पालीथीन शीट को गर्मियों में 4–6 सप्ताह के लिए फैलाकर उसके चारों तरफ के किनारों को मिट्टी से अच्छी तरह से दबा दिया

जाता है ताकि सूर्य कि गर्मी से पॉलीथीन शीट के नीचे मिट्टी का तापमान सामान्य की अपेक्षा 8–10 डिग्री सेल्सियस बढ़ जाये।

यह विधि नर्सरी के लिए बहुत ही लाभदायक और कम खर्चीली है और इससे विभिन्न प्रकार के खरपतवार के बीज/प्रकंद (कुछ को छोड़कर जैसे मोथा और हिरनखुरी इत्यादि) नष्ट हो जाते हैं। परजीवी खरपतवार ओरोबेन्की, सूत्रकृमि और मिट्टी से होने वाली बीमारियों के जीवाणु इत्यादि भी नष्ट हो जाते हैं। यह विधि काफी व्यावहारिक और सफल है।

रासायनिक विधि द्वारा खरपतवार प्रबंधन

अलग–अलग सब्जियों के हिसाब से खरपतवारों के नियंत्रण हेतु कई शाकनाशियों की संस्तुति की गई है, जो काफी कारगर हैं, लेकिन इच्छा के अनुरूप कारगर चयनित नींदानाशी की संख्या अभी भी कम है। यह विधि कारगर, श्रम और समय की बचत करने वाली तथा कम खर्चीली है। सब्जियों में पाया गया है कि खरपतवार को नियंत्रित करने हेतु यदि नींदानाशी का प्रयोग यांत्रिक अथवा कर्षण विधि के समन्वय से किया जाये तो यह बहुत ही प्रभावी और कारगर होता है।

एकीकृत खरपतवार प्रबंधन

सब्जियों के खरपतवार प्रबंधन में यह पाया गया है कि कोई भी एक विधि ज्यादा कारगर (आर्थिक अथवा नियंत्रण की दृष्टि से) नहीं है। अंकुरण पूर्व प्रयोग होने वाली शाकनाशी का एक निंराई के साथ समन्वय कर प्रयोग करने से न केवल एक ही विधि से नियंत्रण पर निर्भरता कम हो जाती है, बल्कि ज्यादा लाभदायक परिणाम प्राप्त होते हैं। इसका मुख्य उद्देश्य खरपतवार नियंत्रण में शाकनाशी की मात्रा को कम करना है जिससे इन रसायनों के पर्यावरण पर होने वाले दुष्परिणामों से बचा जा सके तथा खाद्य पदार्थों में इन रसायनों के अवशेष सीमित मात्रा में ही रहें।

संस्तुत किये गये नींदानाशियों का फसल के हिसाब से विवरण					
शाकनाशी का रासायनिक नाम	**व्यावसायिक नाम**	**रासायनिक मात्रा (ग्राम /है.)**	**प्रयोग का समय**	**प्रयोग वाली फसलें**	**टिप्पणी**
पैंडीमेथालीन	स्टाम्प, पेन्डीगोंल्ड, पेन्डीलीन, धानुटाप, पेनिडा, पेंडीहर्ब	1000–1250	बुआई /रोपाई के बाद किन्तु अंकुरण से पूर्व।	प्याज, लहसुन, पत्ता गोभी, फूल गोभी, आलू, चुकन्दर, गाजर, मूली, धनिया, मेथी, जीरा, सौंफ, मटर	सभी वार्षिक घासकुल और कुछ चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों को नियंत्रित करता है।
आक्सीफ्लुओरफेन	आल्टो, गोल, आक्सीगोल्ड, रोनाल्डो	200–300	बुआई /रोपाई के तीन दिन के भीतर	आलू, प्याज।	सभी प्रकार के वार्षिक घासकुल और कुछ चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों का प्रभावी नियंत्रण
ब्यूटाक्लोर	मचेटी, बीडकिल, टीअर, धानुक्लोर, विलक्लोर, ट्रैप,	750–1000	बुआई /रोपाई के बाद किन्तु अंकुरण से पूर्व।	टमाटर, कुकुरबिट्स, आलू, गाजर।	मुख्यतः घासकुल और कुछ चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों के लिए उपयुक्त है।
मेट्रीब्यूजिन	सेंकोर, लेक्सोन, टाटा मेट्री	200–350	बुआई /रोपाई के बाद किन्तु अंकुरण से पूर्व।	टमाटर, आलू, गाजर।	घासकुल और चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों के लिए उपयुक्त है।
प्रोपाक्विजोफाप +आक्सीफ्लुओरफेन	डेकाल	150	2–4 पत्ती अवस्था	प्याज	मुख्यतः संकरी एवं चौड़ी पत्ती
मेट्रीब्यूजिन+ क्लोडिनोफाप	सगुन	270	2–4 पत्ती अवस्था	आलू	

शाकनाशी रसायनों के प्रयोग में सावधानियां

1. शाकनाशी रसायनों की उचित मात्रा का ही प्रयोग करना चाहिए। यदि संस्तुति दर से अधिक शाकनाशी का प्रयोग किया जाता है तो खरपतवारों के अतिरिक्त फसल को भी क्षति पहुंच सकती है।
2. शाकनाशी रसायनों को उचित समय पर छिड़कना चाहिए। अगर छिड़काव समय से पहले या बाद में किया जाता है तो लाभ की अपेक्षा हानि की संभावना रहती है।
3. शाकनाशी रसायनों का घोल तैयार करने के लिए रसायन व पानी की सही मात्रा का उपयोग करना चाहिये।
4. एक ही रसायन का बार–बार फसलों पर छिड़काव न करें बल्कि बदल–बदल कर करें अन्यथा खरपतवारों में लगातार उपयोग में लाने वाले शाकनाशी के प्रति प्रतिरोधक क्षमता विकसित हो सकती है।
5. छिड़काव के समय मृदा में पर्याप्त नमी होनी चाहिए तथा पूरे खेत में छिड़काव एक समान होना चाहिए।
6. छिड़काव के समय मौसम साफ होना चाहिए।
7. यदि दवा इस्तेमाल से ज्यादा खरीद ली गई है तो उसे ठंडे, शुष्क और अंधेरे स्थान पर रखें तथा ध्यान रखें कि बच्चे और पशु इसके सम्पर्क में न आयें।
8. प्रयोग करते समय ध्यान रखिये कि रसायन शरीर पर न पड़े। इसके लिए विशेष पोशाक, दस्ताने, जूते व चश्मों का प्रयोग करें अथवा उपलब्ध न होने पर हाथ में पॉलीथीन लपेट लें तथा चेहरे पर गमछा (तौलिया) बांध लें।
9. प्रयोग के पश्चात् खाली डिब्बों को नष्ट कर मिट्टी में दबा दें। इसे साफ कर इसका प्रयोग खाद्य पदार्थों को रखने के लिए कतई न करें।
10. छिड़काव के समाप्त होने के बाद दवा छिड़कने वाले व्यक्ति, साबुन से अच्छी तरह हाथ व मुंह अवश्य धो लें।

तेल ताड़ में सिंचाई प्रबंधन

डा. एम.वी. प्रसाद, डा. के. मनोरमा एवं डा. आर.के. माथुर

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद – भारतीय तेल ताड़ अनुसंधान संस्थान
पेदवेगी, पश्चिमी गोदावरी जिला, आन्ध्र प्रदेश – 534 450

तेल ताड़ की खेती में सिंचाई प्रबंधन सर्वाधिक महत्वपूर्ण आदानों में से एक है। नमी की कमी से तेल ताड़ में दबाव उत्पन्न होता है जिससे इसकी वृद्धि और उपज पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। तेल ताड़ की खेती करने वाले अधिकांश इलाकों में वर्षभर वर्षा के असमान वितरण के कारण, बोरवेल के माध्यम से तेल ताड़ में सिंचाई की जाती है। दबाव को रोकने के लिए पर्याप्त वर्षा नहीं होने की स्थिति में तेल ताड़ में नियमित रूप से सिंचाई करने की जरूरत होती है। कम सिंचाई के कारण दबाव बढ़ता है जिससे भावी अवस्थाओं में उपज में कमी आती है।

नमी दबाव का प्रभाव

तेल ताड़ के लिए उच्चतर उपज हासिल करने में सिंचाई का महत्वपूर्ण योगदान है। तेल ताड़ में जल की कमी के कारण पाए गए लक्षणों में पत्ती उत्पादन में कमी, बिना खुली तकली पत्तियों (स्पीयर पत्ती) का अधिक संचयन, निचली पत्तियों का वृत्ताकार का मुड़ना, पत्र रंध्र का बंद होना, पुष्पन में विलम्ब, पकने में विलम्ब, मादा पुष्पक्रम के गठन में दबाव एवं नर पुष्पक्रम में वृद्धि, तथा मादा पुष्पक्रम का नष्ट होना शामिल है। इसके परिणामस्वरूप उपज में कमी आती है।

जल अल्पता के कारण पाए गए सामान्य लक्षण

तेल ताड़ में जल अल्पता के संकेतक बिना खुली तकली पत्तियों (स्पीयर पत्ती) का संचयन, निचली पत्तियों का वृत्ताकार मुड़ना, पत्तियों में पीलापन तथा पत्तियों के सिरों पर ऊतकक्षय जोन का प्रकटन हैं। यदि जल की कमी गंभीर है तब मादा पुष्पक्रम का नष्ट होना और साथ ही पौधे की वृद्धि में कमी भी पाई जा सकती है।

निचली पत्तियों का वृताकार मुड़ना

बिना खुली तकली की संख्या में वृद्धि

पत्तियों में पीलापन और पुरानी पत्तियों में ऊतकक्षय रोग

मादा पुष्पक्रम का नष्ट होना

जल की कमी के कारण युवा पौध में पाए गए लक्षण

नई पत्तियों का नहीं खुलना, अंदर की ओर पत्तियों का घूर्णन यथा पत्तियों का बाहर की ओर घूमना। जल की अत्यधिक कमी होने पर पत्तियों में पीलापन और पुरानी पत्तियों में ऊतकक्षय रोग देखा जा सकता है।

जल दबाव से परिपक्व ताड़ में पाए गए लक्षण

बिना खुली तकली पत्तियों (स्पीयर पत्ती) का नहीं खुलना, निचली पत्तियों के सिरों का वृताकार रूप में मुड़ना, पत्तियों में मुरझान अथवा म्लानि एवं शुष्कन, मादा पुष्पक्रम के गठन में दबाव तथा नर पुष्पक्रम में वृद्धि, मादा पुष्पक्रम का नष्ट होना तथा गुच्छा असफलता जैसे लक्षण शामिल हैं। इसके परिणामस्वरूप अनुवर्ती अवस्थाओं (18–24 माह बाद) में उपज में कमी आती है।

सिंचाई कहां करें

तेल ताड़ की जड़ प्रणाली उथली होती है। अधिकांश जड़ें 50–60 सेमी. (2 फीट) की गहराई तक बढ़ती हैं। अधिकांश जड़ें पार्श्वीय रूप से 1–3 मीटर तक फैलती हैं। अतः केवल इस क्षेत्र (विस्तारित जड़ क्षेत्र) में ही सिंचाई करने की जरूरत होती है। अधिक सिंचाई करने से 60 सेमी. गहराई से आगे रिसाव होने की संभावना रहती है जिसके कारण सिंचित जल के साथ–साथ पोषक तत्व भी नष्ट हो जाते हैं। इससे भविष्य में जल दबाव में वृद्धि के साथ साथ पौधा एवं उपज में कमी हो सकती है।

आवश्यक जल की मात्रा

जल की आवश्यकता रोपण की आयु, मृदा की प्रकृति और

माह	मृदा की प्रकृति के अनुसार जल (लीटर)/दिन/ताड़ की मात्रा	प्रति घंटा/प्रति दिन/प्रति ताड़ ड्रिप की संख्या (4 ड्रिपर्स/ताड़, प्रत्येक ड्रिपर द्वारा 16 लीटर/घंटा/ताड़ यथा 64 लीटर/ताड़/घंटा का निस्राव किया जाता है)	सूक्ष्म स्प्रिंक्लर घंटों की संख्या/दिन/ताड़ (2 स्प्रिंक्लर/ताड़, प्रत्येक द्वारा 40 लीटर/घंटा यथा 80 लीटर/ताड़/घंटा का निस्राव किया जाता है)	सूक्ष्म स्प्रिंक्लर घंटों की संख्या/दिन/ताड़ (2 स्प्रिंक्लर/ताड़, प्रत्येक द्वारा 30 लीटर/घंटा यथा 60 लीटर/ताड़/घंटा का निस्राव किया जाता है)
जून – सितम्बर	100–150	2–2.15 घंटे	1.30–2.00 घंटे	1.45–2.30 घंटे
अक्टूबर – फरवरी	160–70	2.30–2.45 घंटे	2.00–2.15 घंटे	2.45–3.00 घंटे
मार्च – मई	215–165	3.30–4.00 घंटे	2.30–3.30 घंटे	3.30–4.45 घंटे
अत्यधिक गर्मी	350	5.30 घंटे	4.30 घंटे	6 घंटे

निचली पत्तियों के सिरों का वृत्ताकार रूप में मुड़ना

किसी विशेष स्थान में प्रचलित क्षमताशील वाष्पोत्सर्जन पर निर्भर करती है। क्षमताशील वाष्पोत्सर्जन उस विशेष क्षेत्र में प्रचलित तापमान, आपेक्षिक आर्द्रता, सौर विकिरण तथा हवा के वेग पर निर्भर करता है। भाकृअनुप – भारतीय तेल ताड़ अनुसंधान संस्थान (ICAR- IIOPR), पेदवेगी में तेल ताड़ में सिंचाई पर किए गए अनुसंधान अध्ययनों के आधार पर विभिन्न महीनों में जल की आवश्यकता का मानकीकरण किया गया है जो कि सारणी में दिया गया है।

सिंचाई की विधि

बेसिन सिंचाई

ड्रिप के माध्यम से सिंचाई

यदि सिंचाई जल की समस्या नहीं है तब वहां बेसिन सिंचाई की जा सकती है। सिंचाई नालियों अथवा चैनलों को इस प्रकार तैयार किया जाए ताकि उप–नालियों द्वारा प्रत्येक ताड़ को अलग से जोड़ा जा सके। साप्ताहिक अन्तराल पर जल की वांछित मात्रा से सिंचाई की जा सकती है। हल्की बनावट वाली मृदाओं के लिए, कम जल के साथ बार–बार सिंचाई की जाए। यदि एक ही बार में अधिक सिंचाई की जाती है तब पोषक तत्वों का रिसाव अधिक होगा। भारी बनावट वाली मृदाओं में, सिंचाई अन्तराल को बड़ा किया जा सकता है। हालांकि, उच्चतर पोषक तत्व उपयोग प्रभावशीलता

सूक्ष्म स्प्रिंक्लर के माध्यम से सिंचाई

(NUE) एवं जल उपयोग प्रभावशीलता (WUE) के लिए सूक्ष्म सिंचाई का इस्तेमाल करने की सलाह दी जाती है।

ड्रिप/सूक्ष्म स्प्रिंक्लर के माध्यम से सिंचाई

यदि सिंचाई जल की उपलब्धता सीमित है और भूमि ऊबड़–खाबड़ अथवा असमतल है तब ड्रिप अथवा सूक्ष्म स्प्रिंक्लर की मदद से सिंचाई करना लाभप्रद हो सकता है। यदि ड्रिप सिंचाई को स्थापित किया जाता है, तब प्रत्येक ताड़ के लिए चार ड्रिपर्स को लगाया जाए। यदि प्रत्येक ड्रिपर द्वारा प्रति घंटा 16 लिटर जल का निस्राव किया जाता है तब प्रति दिन 2–6 घंटे सिंचाई करना पर्याप्त होगा जो कि किसी विशेष इलाके में ताड़ की आयु और क्षमताशील वाष्पोत्सर्जन (PET) पर निर्भर करता है। सही तरीके से जल का निस्राव सुनिश्चित करने के लिए समय–समय पर ड्रिपर्स की जांच की जानी चाहिए।

सूक्ष्म स्प्रिंक्लर सिंचाई के मामले में दो सूक्ष्म स्प्रिंक्लर को स्थापित किया जाए। 30 लिटर/40 लिटर निस्राव क्षमता वाले सूक्ष्म स्प्रिंक्लर का उपयोग करें। ड्रिप अथवा सूक्ष्म स्प्रिंक्लर में प्रतिदिन पर्याप्त नमी आपूर्ति को सुनिश्चित करें। निस्राव क्षमता पर निर्भर करते हुए अधिक गरमी वाले मौसम के दौरान 300–350 लीटर जल की आपूर्ति सुनिश्चित करें। जल की आवश्यकता के आधार पर, ड्रिपर्स/स्प्रिंक्लर्स को चलाने का समय निर्धारित करें।

सिंचाई की आवृत्ति

मृदा की प्रकृति, ताड़ की आयु, मृदा में जल धारण करने की क्षमता के आधार पर सिंचाई की जाए। हल्की बनावट वाली मृदाओं में, पानी की कम मात्रा के साथ बार–बार सिंचाई करने की

तेल ताड़ के थाला में पलवार बिछाना

आवश्यकता होती है। यदि एक बार में ही अधिक पानी दिया जाए तो पोषक तत्वों का रिसाव कहीं ज्यादा होगा। भारी बनावट वाली मृदाओं में सिंचाई अंतराल को बढ़ाया जा सकता है। प्रति ताड़ प्रति दिन जल की आवश्यकता के आधार पर ड्रिप अथवा सूक्ष्म स्प्रिंक्लर को चलाने की जरूरत होती है। अतः आवश्यकतानुसार ड्रिप/सूक्ष्म स्प्रिंक्लर को चलाने का समय निर्धारित करना चाहिए।

पलवार बिछाना

मृदा में नमी को बनाये रखने और साथ ही खरपतवारों की रोकथाम करने के लिए तेल ताड़ के बेसिन में पलवार बिछाना जरूरी हो जाता है। सूखी पत्तियों, नर पुष्पक्रम, नारियल का छिलका तथा फैक्ट्री से लाए गए खाली फल गुच्छों के साथ पलवार को बिछाना चाहिए। वयस्क तेल ताड़ रोपण में, तेल ताड़ की पंक्तियों/बेसिन के मध्य कटी हुई पत्तियों का ढ़ेर बनाया जा सकता है जो कि पलवार के रूप में कार्य करता है। पलवार से न केवल मृदा में नमी का संरक्षण करने में मदद मिलती है वरन् इससे मृदा का अनुकूल तापमान बनाये रखने, जैविक पदार्थ और मुख्यतः पोटैशियम जैसे पोषक तत्वों को शामिल करने तथा मृदा की भौतिक एवं जैविक विशेषताओं को सुधारने में मदद मिलती है।

जल निकासी की सुविधा

यदि तेल ताड़ की खेती भारी मृदा और बाढ़ संवेदी क्षेत्रों में की जाती है, तब जल की निकासी के लिए जल–निकासी नालियां अथवा चैनल बनायें।

जल की उपलब्धता को ध्यान में रखकर सिंचित जल का उपयोग प्रभावी एवं दक्षतापूर्ण तरीके से किया जाना चाहिए।

प्रति बूंद – अधिक फसल लेना जरूरी है। उपरोक्त संस्तुत विधियों और संस्तुत जल मात्रा को अपनाकर किसान प्रतिवर्ष प्रति हेक्टेयर में 20–25 टन ताजा फल गुच्छा (FFB) उत्पादन प्राप्त कर सकते हैं।

सौंफ की फसल से अर्थव्यवस्था में सुधार

डॉ दिलीप सिंह
सहायक प्राध्यापक (उद्यान)
कृषि विज्ञान केन्द्र, कुम्हेर–भरतपुर राजस्थान

''मसालों की भूमि'' भारत, सौंफ का सबसे बड़ा उत्पादक है। इसके अन्तर्गत क्षेत्रफल, उत्पादन व उत्पादकता क्रमशः 79,842 हैक्टेयर, 1,28,497 टन व 16.09 क्विंटल/हैक्टेयर है (2020–21)। देश के ''बीजीय मसालों का कटोरा'' व सबसे बड़े सौंफ उत्पादक राज्य राजस्थान एवं गुजरात में सौंफ का क्षेत्रफल क्रमशः 31,622 हैक्टेयर, 42,038 हैक्टेयर व उत्पादन क्रमशः 34,276 टन, 87,435 टन व उत्पादकता क्रमशः 10.84 क्विंटल/हैक्टेयर, 20.80 क्विंटल/हैक्टेयर है। भारत से सौंफ के बीजों (दानों) का निर्यात लगभग 31,800 टन है जिसका मूल्य रू0 27,630 लाख है। जिनका देश के मसालों के निर्यात में मात्रात्मक व मूल्य आधार पर क्रमशः 2.032 प्रतिशत व 1.016 प्रतिशत हिस्सा है (भारतीय मसाला बोर्ड, 2020–21)। सौंफ के बीजों में लगभग 9.5 प्रतिशत प्रोटीन, 13.4 प्रतिशत खनिज लवण एवं विभिन्न विटामिनों की संतोषजनक मात्रा पाई जाती है। इसे शर्बत, ठंडाई, अचार व सौंफ पानी (शिशुओं की दवा) बनाने में प्रयोग करते हैं।

राजस्थान में राष्ट्रीय बीजीय मसाला अनुसंधान केन्द्र, अजमेर, श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय जोबनेर व अन्य कृषि विश्वविद्यालयों में भी बीजीय मसालों पर अनुसंधान किया जाता है। अजमेर से विकसित सौंफ की किस्में अजमेर सौंफ–1, अजमेर सौंफ–2 व जोबनेर से विकसित किस्में आर एफ–101, आर एफ–125, आर एफ–205, आर एफ–143 व आर एफ–145 हैं।

भरतपुर जिले में सौंफ की खेती की तरफ किसानों का रूझान बढ़ रहा है। इसकी खेती सिंचित अवस्था में करने पर अन्य फसलों जैसे गेहूं व सरसों की तुलना में लाभदायक साबित हो रही है। कमजोर भूमि, कम पोषक तत्वों की आवश्यकता तथा पशुओं द्वारा खेत में कोई नुकसान नहीं करना भी किसानों को इसकी खेती की तरफ आकर्षित कर रहा है। यह फसल कीट व बीमारियों का कम प्रकोप, अधिक पैदावार व अधिक बाजार मूल्य (रू0 6000 से 7000 प्रति क्विंटल) होने के कारण किसानों की अर्थव्यवस्था सुधारने में भूमिका निभा सकती है।

कृषि विज्ञान केन्द्र, कुम्हेर–भरतपुर द्वारा रबी मौसम में भरतपुर जिले में सौंफ उत्पादन की उन्नत तकनीकों पर प्रदर्शन लगाये। किसानों की परम्परागत तकनीकों की तुलना में प्रदर्शनों में पैदावार 22.30 से 23.80 क्वि0/हैक्टेयर पैदावार में वृद्धि 18.41 प्रतिशत तक व शुद्ध आय 116800रू /हैक्टेयर तक प्राप्त हुई ।

सौंफ की उन्नत सस्य क्रियाएं–

जलवायु–इसके लिए शुष्क एवं ठण्डा मौसम उपयुक्त रहता है। परन्तु फल अवस्था कम तापमान से प्रभावित होती है। फूल आते समय लम्बे समय तक बादल व अधिक नमी से बीमारियों का प्रकोप अधिक होता है।

भूमि व खेत की तैयारी–जीवांश युक्त सभी प्रकार की उचित जल निकास वाली भूमि उपयुक्त रहती है। नमी की कमी होने पर सिंचाई कर खेत की जुताई व पाटा चलायें।

उन्नत किस्में –

अजमेर सौंफ–1 व अजमेर सौंफ–2 –180–190 दिन में पकने वाली किस्म, अगेती व सर्दी के मौसम की बुवाई के लिए उपयुक्त है। इनके बीज आकर्षक व बड़े होते हैं। अगेती फसल व सर्दी की फसल से औसत पैदावार क्रमशः 25.0 व 19.5 क्वि. प्रति हैक्टेयर प्राप्त होती है। यह किस्में रामूलेरिया व अगेती झुलसा बीमारियों के लिए प्रतिरोधक हैं ।

राजस्थान सौंफ–125 – जल्दी पकने वाली (120–130 दिन) छोटे पौधे, ठोस पुष्पक्रम, लम्बे व बड़े दाने वाली एवं औसत पैदावार 17.3 क्वि0/हैक्टेयर तथा पैदावार क्षमता 29.45 क्वि0/हैक्टेयर है।

राजस्थान सौंफ–101– देर से पकने वाली किस्म (150–160 दिन) बड़े पुष्पक्रम, लम्बे व बड़े दाने वाली एवं औसत पैदावार 15.5 क्वि0/हैक्टेयर है।

गुजरात सौंफ–1 – सूखा सहनशील व अगेती बुवाई के लिए उपयुक्त, पत्ती धब्बा व अन्य बीमारियों के लिए मध्यम रूप से सहनशील है। इसके बीज अण्डाकार, बड़े व गहरे भूरे रंग के होते हैं। यह देर से पकने (225 दिन) वाली किस्म है जिसकी औसत पैदावार लगभग 17.0 क्विं0/हैक्टेयर है।

राजस्थान सौंफ–143 –दोमट व काली भूमि के लिए उपयुक्त, औसत पैदावार 15 क्वि./हैक्टेयर है।

अन्य किस्में आर.एफ. – 178, आर .एफ.– 281, आर .एफ. – 205, आर एफ–145 व गुजरात सौंफ–11।

खाद एवं उर्वरक–खेत की तैयारी से पहले 10–15 टन/हैक्टेयर की दर से अच्छी तरह सड़ी हुई गोबर की खाद या कम्पोस्ट भूमि में मिलाते हैं। भूमि की जॉच के आधार पर नत्रजन, फास्फोरस व पोटाश की मात्रा क्रमशः 90, 60 व 60 किलो/हैक्टेयर की दर से देते हैं। 30 किलोग्राम नत्रजन व सम्पूर्ण फास्फोरस व पोटाश मशीन द्वारा अंतिम जुताई के साथ ऊरकर देते हैं। 30 किलोग्राम नत्रजन बुवाई के 45 दिन बाद व 30 किलोग्राम नत्रजन फूल आने के समय सिंचाई के साथ देते हैं। आवश्यकता होने पर सूक्ष्म पोषक तत्व जिंक सल्फेट, फैरस सल्फेट व कैल्शियम सल्फेट प्रत्येक तत्व 0.5 प्रतिशत की दर से छिड़काव करें।

बीज की मात्रा व बुआई– सौंफ की सीधी बुबाई के लिए 8–10 किलोग्राम बीज प्रति हैक्टेयर को फफूंदीनाशक दवा कार्बनडाजिम 2 ग्राम या जैविक ट्राईकोडर्मा 6–8 ग्राम बीज की दर से उपचारित कर सीडड्रिल मशीन से 45 सेमी की दूरी पर कतारों में 2 सेंटीमीटर गहराई पर बुआई करने से सिंचाई के पानी की बचत व अधिक पैदावार मिलती है। बुआई सितम्बर – अक्टूबर में करते हैं। रोपण विधि से पौधे तैयार करने के लिए 3–4 किलोग्राम बीज को 100 वर्गमीटर नर्सरी क्षेत्र में जुलाई–अगस्त में बुआई से एक हैक्टेयर में रोपाई के लिए पौध तैयार हो जाती है । 7–8 दिन में बीजों का अंकुरण हो जाता है। अंकुरण से पूर्व आवश्यकता होने पर बहुत हल्की सिंचाई भी कर सकते हैं। 7–8 सप्ताह की पौध रोपाई योग्य हो जाती है। रोपाई 45 सेमी की दूरी पर बनी कतारों में 20–25 सेमी पौधों के बीच की दूरी रखते हुए करते हैं। रोपाई कर हल्की सिंचाई अवश्य करें।

सिंचाई– जड़ें गहरी होने के कारण निराई–गुड़ाई व हल्की सिंचाई कर पानी की बचत कर सकते हैं। भूमि में नमी कम होने पर बुआई के 3–4 दिन बाद हल्की सिंचाई करें, क्योंकि पानी का बहाव तेज होने पर बीज बहकर किनारे पर इकट्ठे हो जायेंगे। बीजों का अंकुरण पूर्ण होने के लिए दूसरी सिंचाई बुआई के 12–15 दिन बाद करनी चाहिए। फूल आने के बाद फसल को पानी की कमी नहीं होनी चाहिए। भूमि व जलवायु को ध्यान में रखते हुए आवश्यकतानुसार 25–30 दिन के अन्तराल पर 4 –5 सिंचाई करते हैं।

खरपतवार प्रबन्धन–गर्मियों में गहरी जुताई करें। खाद की अच्छी तरह से कम्पोस्ट बनायें जिससे खाद के अन्दर खरपतवारों के बीज समाप्त हो जायें। सौंफ की बुआई के 25 व 50 दिन बाद दो बार हाथ से निराई–गुड़ाई करें। सघन स्थानों से पौधे उखाड़कर विरल स्थानों पर लगा सकते हैं। बुआई के तुरन्त बाद खरपतवारों के उगने से पहले भूमि में नमी की उपस्थिति में खरपतवारनाशी ऑक्सीफ्लूरोफेन 0.5 किलोग्राम या पेन्डीमिथेलीन (स्टाम्प) 1.0 किलोग्राम

सक्रिय तत्व प्रति हैक्टेयर 1000 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।

फसल संरक्षण

कीट प्रबन्धन–सफेद मक्खी, मोयला व मकड़ी कीट पौधे के कोमल भागों से रस चूसते हैं।

थ्रिप्स– ये छोटे आकार के कीट कोमल एवं नई पत्तियों से हरा पदार्थ खुरचकर खाते हैं जिससे पत्तियों पर धब्बे पड़ जाते हैं तथा पत्ते पीले होकर सूख जाते हैं।

प्रबन्धन हेतु फसल पर डाइमिथेएट 30 ई.सी. या मैलाथियॉन 50 ई.सी. की एक मिलीलीटर मात्रा प्रति लीटर पानी की दर से छिड़कें। आवश्कतानुसार 15–20 दिन बाद छिड़काव दोहरायें। नीम के बीजों का सत 5 प्रतिशत की दर से छिड़काव कर सकते हैं।

सीड मिज–यह कीट बीजीय मसालों में नुकसान पहुँचाता है। खड़ी फसल में यह कीट कच्चे फलों/दानों में अण्डे देते हैं। सूड़ियॉ अन्दर से बीजों को खाती हैं। सूंड़ी व प्यूपा अवस्था फसल कटाई के समय बीज में उपस्थित रहते हैं। वयस्क कीट भण्डारण में दानों में छेद बनाकर बाहर निकलते हैं। इससे सौंफ की बीज वाली फसल में 40 प्रतिशत तक नुकसान हो सकता है।

प्रबन्ध–राजस्थान में सौंफ की बुआई सितम्बर के तीसरे सप्ताह में करने पर अक्टूबर व नवम्बर की बुबाई की तुलना में कीट dkuqlku de ik;kx;kgSA vdsyhQly dh rqyuk esa Dill (सूवा) के साथ सौंफ की अन्तरासस्य खेती (2:1 व 3:1) करने से सकारात्मक परिणाम प्राप्त हुए हैं। जैविक कीटनाशी करंज या नीम खली 500 किलोग्राम/हैक्टेयर बुआई के समय भूमि में मिलायें और तीन बार नीम बीज सत या करंज बीज सत 5 प्रतिशत या फ्रेनवेलनेट 0.01 प्रतिशत फूल आरम्भ होने पर 15 दिन के अन्तराल पर छिड़काव करें।

बीमारियॉ

छाछया (पाउडरी मिल्ड्यू)– रोग की शुरूआत में पत्तियों एवं टहनियों पर सफेद चूर्ण (फफूंद) दिखाई देती है जो बाद में पूरे पौधे पर फैल जाता है। रोकथाम हेतु कैराथेन 0.1 प्रतिशत या घुलनशील गंधक 0.25 प्रतिशत की दर से छिड़कें।

जड़ व तना गलन–रोगी पौधों का तना नीचे से मुलायम हो जाता है और जड़ें गल जाती है। जड़ों पर छोटे–बड़े काले रंग के स्कलेरोशिया दिखाई देते हैं। बुआई पूर्व कार्बन्डाजिम या ट्राईकोडर्मा से बीज उपचार करें। बुआई से पूर्व ट्राईकोडर्मा मित्र फफूंद (जैविक) की 4–5 किलो मात्रा को 50 किलो गोबर की खाद में मिलाकर 4–5 दिन छाया में रखने के बाद सायंकाल खेत में बिखेरकर जुताई करें। हल्की सिंचाई करें व जल निकास की व्यवस्था करें।

रामूलेरिया ब्लाइट–बुबाई के 60–70 दिन बाद नीचे की पुरानी पत्तियों पर गहरे भूरे धब्बे बन जाते हैं जो बाद में धीरे–धीरे पूरे पौधे पर फैल जाते हैं।

अल्टरनेरिया ब्लाइट – फूलों की कलियॉ पीली–भूरी होकर सूख जाती हैं।

रोकथाम हेतु कार्बन्डाजिम 0.1 प्रतिशत या डाइथेन एम. 45, 0.2 प्रतिशत का 15 दिन के अन्तर पर 2–3 छिड़काव करें।

फिल्लोडी बीमारी–जैसिड कीट द्वारा फैलने वाली माईकोप्लाज्मा जनित बीमारी में पत्तियों के गुच्छे बन जाते हैं। प्रबन्धन हेतु अन्तरासस्य पद्धति में सौंफ व मूंग (1:1) में लगाते हैं। मूंग की बुआई मानसून के शुरू होने पर व सौंफ की रोपाई 15 अगस्त के आस–पास करें। रोपाई के समय पौधों की जड़ों को 0.04 प्रतिशत इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एस.एल. के घोल में 10 मिनट तक डुबोकर रोपाई करते हैं। एक छिड़काव इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एस.एल. का 0.3 मिलीलीटर/लीटर पानी की दर से रोपाई के एक महीने बाद करते हैं। कीटों से बचाव हेतु पौध शैय्या (नर्सरी) को 40 मेस नाइलोन जाल से ढकते हैं।

कटाई–सौंफ की फसल के दानों के गुच्छे एक साथ नहीं पकते हैं। जब पूर्ण आकार के दानों का रंग हरे से पीला होने लगे तो गुच्छों को तोड़ लेना चाहिए। क्योंकि इस समय दानों में वाष्पशील तेल की मात्रा अधिक होती है। काटने के बाद सूखते समय फसल को बार–बार पलटते रहना चाहिए जिससे फफूंद न लगे। चबाने के लिए जब दानों का आकार पूर्ण विकसित दानों की तुलना में आधा होता है तभी गुच्छों की कटाई कर साफ जगह पर छाया में फैलाकर सुखाना चाहिए। इसके लिए 10–15 दिन के अन्तराल पर 3–4 बार कटाई कर सकते हैं। सामान्यतः इसकी कटाई अप्रैल माह में शुरू हो जाती है। बुआई हेतु बीज प्राप्त करने के लिए मुख्य छत्रकों (गुच्छों) के दाने जब पूर्णतया पककर पीले पड़ने लगे तभी कटाई करनी चाहिए।

जैविक खेती के लाभ व खाद निर्माण की विधियाँ

डॉ. विनोद कुमार

कृषि विज्ञान केंद्र, भिवानी
चौधरी चरण सिंह हरियाणा
कृषि विश्वविद्यालय, हिसार, हरियाणा

कृषि भारतवर्ष में ग्रामीण अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार है और कृषकों की आय का मुख्य साधन है। हरित क्रांति के समय से बढ़ती हुई जनसंख्या को भोजन की आपूर्ति के लिए एवं आय की दृष्टि से अधिक उत्पादन के लिये खेती में अधिक मात्रा में रासायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशकों का उपयोग करना पड़ता है जिससे सामान्य व छोटे कृषक के पास कम जोत में अत्यधिक लागत लग रही है और जल व भूमि की उर्वरा शक्ति खराब तथा वायु और वातावरण भी प्रदूषित हो रहा है। साथ ही खाद्य पदार्थ भी जहरीले हो रहे हैं जिससे मनुष्य के स्वास्थ्य में गिरावट आ रही है। प्राचीन काल में मानव स्वास्थ्य के अनुकूल तथा प्राकृतिक वातावरण के अनुरूप खेती की जाती थी, जिससे जैविक और अजैविक पदार्थों के बीच आदान–प्रदान का चक्र निरन्तर चलता रहा था। इसके फलस्वरूप जल, भूमि, वायु तथा वातावरण प्रदूषित नहीं होता था। भारतवर्ष में प्राचीन काल से कृषि के साथ–साथ गौ पालन किया जाता था परन्तु बदलते परिवेश में गौ पालन धीरे–धीरे कम हो गया तथा कृषि में तरह–तरह के रासायनिक खादों व कीटनाशकों का प्रयोग हो रहा है। इसके फलस्वरूप जैविक और अजैविक पदार्थों के चक्र का संतुलन बिगड़ता जा रहा है। रासायनिक खादों का अत्यधिक उपयोग हानिकारक होता है। रासायनिक खादें सतह और भूमिगत जल प्रदूषण के लिए भी उत्तरदायी होती हैं। इसके अतिरिक्त, नाइट्रोजन खादों के अत्यधिक प्रयोग से फसलों पर रोग और नाशीजीवों के प्रकोप की भी संभावना रहती है। रासायनिक खादों के निरंतर प्रयोग से मृदा में ह्यूमस और पोषक तत्वों की कमी हो जाती हैं जिसके परिणामस्वरूप उसमें सूक्ष्म जीव कम पनपते हैं। रासायनिक खादों के अत्यधिक उपयोग के कारण भारतीय मृदाओं में कार्बनिक पदार्थों और नाइट्रोजन की आमतौर पर कमी पाई जाती है।

इसलिए इस प्रकार की सभी समस्याओं से निपटने के लिये गत वर्षों से निरन्तर टिकाऊ खेती के सिद्धांत पर खेती करने की सिफारिश की गई। इस विशेष प्रकार की खेती को हम जैविक खेती के नाम से जानते हैं।

जैविक खेती के लाभ –

1. भूमि में जैविक कार्बन का स्तर बढ़ता है जिससे भूमि के उपजाऊपन में वृद्धि होती है।

2. जैविक खेती से भूमि की जल धारण शक्ति में वृद्धि होती है व भूमि से पानी का वाष्पीकरण कम होता है। रासायनिक खाद भूमि के अंदर के पानी को जल्दी सोख लेते हैं जबकि जैविक खाद जमींन की ऊपरी सतह में नमी बना कर रखते हैं जिससे सिंचाई की आवश्यकता रासायनिक खेती की अपेक्षा कम पड़ती है।

3. जैविक खेती से प्रदूषण में कमी आती है जबकि रासायनिक खादों एवं कीटनाशकों से पर्यावरण प्रदूषित होता है। खेतों के आसपास का वातावरण जहरीला हो जाता है जिससे वहाँ के वनस्पति, जानवर एवं पशु पक्षी मरने लगते हैं। जैविक खादों एवं जैविक कीटनाशकों के प्रयोग से वातावरण शुद्ध रहता है।

4. जैविक खेती से उत्पादों की गुणवत्ता रासायनिक खेती की तुलना में बेहतर होती है एवं उत्पाद ऊँचे दामों में बाजार में बिकते हैं जिससे किसानों की औसत आय में वृद्धि होती है।

5. स्वास्थ्य की दृष्टि से जैविक उत्पाद सर्वश्रेष्ठ होते हैं एवं इनके प्रयोग से कई प्रकार के रोगों से बचा जा सकता है।

6. रासायनिक खाद पर निर्भरता कम होने से लागत में कमी आती है।

7. कचरे का उपयोग खाद बनाने में होने से गाँव में सफाई बनी रहती है व बीमारियों में कमी आती है।

जैविक खेती हेतु खाद का निर्माण

रासायनिक खाद फसल के लिए उपयुक्त जीवाणुओं को नष्ट कर देती है। इन सूक्ष्म जीवाणुओं के तंत्र को विकसित करने के लिए जैविक खाद का प्रयोग किया जाना चाहिए जिससे फसल के लिए मित्र जीवाणुओं की संख्या में वृद्धि, हवा का संचार, पानी को पर्याप्त मात्रा में सोखने की क्षमता में वृद्धि होती है। जैविक खाद बनाने की कुछ प्रमुख विधियां निम्न हैं

1. गोबर खाद :

यह खाद सर्वाधिक प्रचलित खादों में से एक है। परंपरागत खाद तैयार करने में पांच से आठ माह लगते हैं। खाद में खरपतवारों के बीज गल सड़ कर नष्ट हो जाते हैं। खाद में दीमक भी नहीं लगती। उचित मात्रा में तापमान व नमी मिलने से सूक्ष्म जीवाणुओं की सक्रियता पुरानी विधि की तुलना में तीव्र रहती है। अच्छी तरह से गलने व सड़ने के कारण पोषक तत्व शीघ्र व संतुलित मात्रा में फसल को मिलते हैं। सही रूप से तैयार गोबर की खाद में नत्रजन 0.4– 0.6 प्रतिशत, फास्फोरस 0.2 –0.3 प्रतिशत, पोटाश की मात्रा 0.5–0.7 प्रतिशत व अन्य सूक्ष्म पोषक तत्व भी उचित मात्रा में पाये जाते हैं।

2. कम्पोस्ट खादः

यह खाद वनस्पति को गलाकर तैयार करते हैं। इन अपशिष्टों में पत्तियाँ, फसल अवशेष, जड़ें, ठूंठ, पुआल, घास पात आदि शामिल हैं। कम्पोस्ट के लिए गड्ढा खोदें, जो तीन फुट लंबा व तीन फुट चौड़ा होना चाहिए। गड्ढे में पहले चारों तरफ पानी का छिड़काव कर उसे नम कर लें और उसमें पत्ते, पौधे, रसोई व घर का अन्य गलने योग्य कचरा 30 से.मी. ऊंचाई तक भर दें। इस पर एक तह गोबर की बिछा दें। इसके बाद पुनः पानी का छिड़काव करके कूड़ा–कचरा, पत्ते आदि भर दें। इसके बाद पूरे गड्ढे को पांव से दबा दें और उस पर पर्याप्त पानी डाल दें। इस प्रकार गड्ढे को भरपूर भर कर मिट्टी से अच्छी तरह बंद कर दें और समय–समय पर पानी डालते रहें। इस प्रक्रिया से घर के कूड़े–कचरे का सदुपयोग भी हो जाता है। तैयार कम्पोस्ट भुरभुरा, भूरे से गहरे भूरे रंग का होता है। यह खाद, नत्रजन के साथ साथ फास्फोरस, पोटाश व अन्य सूक्ष्म पोषक तत्वों से परिपूर्ण होती है। यह खाद 5–6 माह में तैयार होती है।

3. केंचुआ खाद (वर्मी कम्पोस्ट):

मृदा उर्वरता को बढ़ाने के साथ साथ उपज में वृद्धि एवं गुणवत्ता प्रदान करने में केंचुआ खाद एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। उत्तम किस्म की केंचुआ खाद दुर्गंध रहित होने के साथ साथ वातावरण के अनुकूल होती है जो किसी भी तरह का प्रदूषण नहीं फैलाती। किसान, केंचुआ खाद 45–60 दिन में बना सकते हैं जबकि अन्य खाद बनाने में 5–6 माह लग जाते हैं। यदि बेरोजगार युवक युवतियाँ इसे एक व्यवसाय के रूप में अपनाएं तो यह एक लाभकारी

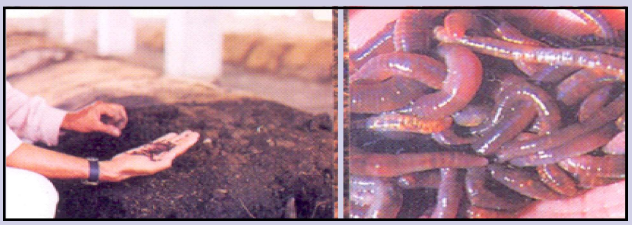

व्यवसाय है। केंचुआ खाद में दोहरा लाभ होता है, एक तो फसल की पैदावार बढ़ती है और दूसरा खाद को अन्य किसानों को बेचकर पैसा कमाने से रोजगार मिलता है। केंचुआ खाद में नत्रजन 1–2.25 प्रतिशत, फास्फोरस 1–1.5 प्रतिशत, पोटाश 2–3 प्रतिशत तथा सल्फर 2 प्रतिशत पाया जाता है।

4. हरी खादः

बिना गले–सड़े हरे पौधे (दलहनी एवं अन्य फसलों अथवा उनके भाग) को जब मृदा की नत्रजन या जीवांश की मात्रा बढ़ाने के लिये खेत में दबाया जाता है तो इस क्रिया को हरी खाद देना कहते हैं। मृदा के लगातार दोहन से उसमें उपस्थित पौधे की बढ़वार के लिये आवश्यक तत्त्व नष्ट होते जा रहे हैं। इनकी क्षतिपूर्ति हेतु व मिट्टी की उपजाऊ शक्ति को बनाये रखने के लिये हरी खाद एक उत्तम विकल्प है। हरी खाद उस सहायक फसल को कहते हैं जिसकी खेती मुख्यतः भूमि में पोषक तत्त्वों को बढ़ाने तथा उसमें जैविक पदाथों की पूर्ति करने के उद्देश्य से की जाती है। प्रायः इस तरह की फसल को इसकी हरी स्थिति में लगभग 6 हफ्ते बाद ही हल चलाकर मिट्टी में मिला दिया जाता है जैसे ढेंचा, लोबिया, मूंग, सनई इत्यादि। यह 50 से 60 किलोग्राम नत्रजन प्रति हेक्टेयर की आपूर्ति करता है।

5. बायोगैस स्लरीः

बायोगैस संयंत्र में गोबर गैस की पाचन क्रिया के बाद 25 प्रतिशत ठोस पदार्थ का रूपान्तरण गैस के रूप में होता है और 75 प्रतिशत ठोस पदार्थ का रूपान्तरण खाद के रूप में होता हैं। जिसे बायोगैस स्लरी कहा जाता हैं। दो घनमीटर के बायोगैस संयंत्र में 50 किलोग्राम प्रतिदिन या 18.25 टन गोबर एक वर्ष में डाला जाता है। उस गोबर में 80 प्रतिशत नमी युक्त करीब 10 टन बायोगैस स्लरी का खाद प्राप्त होता है। यह खेती के लिये अति उत्तम खाद होता है। इसमें 1.5 से 2 प्रतिशत नत्रजन, 1 प्रतिशत स्फुर एवं 1 प्रतिशत पोटाश होता है।

कृषकों के खेतों पर विभिन्न फसल पद्धतियों के प्रक्षेत्र परीक्षणों का अध्ययन

डॉ.रवि यादव, रवि सिंह गुर्जर, डॉ. वाई. पी. सिंह, डॉ. सन्दीप सिंह तोमर, डॉ. जे. सी. गुप्ता एवं दीपेन्द्र शर्मा
फार्मर फर्स्ट परियोजना, आँचलिक कृषि अनुसन्धान केन्द्र, मुरैना, मध्य प्रदेश

आँचलिक अनुसंधान केन्द्र, मुरैना (म.प्र.) द्वारा फार्मर फर्स्ट परियोजना के अन्तर्गत कृषकों के खेतों पर विभिन्न फसल पद्धतियों का विगत वर्षों में अध्ययन किया गया। मुरैना जिले में मुख्यतः खरीफ में बाजरा, ग्वार, धान, अरहर, उड़द एवं मूंग और रबी मौसम में सरसों, गेंहू, चना एवं बरसीम उगायी जाती है। जिले में इन फसलों का क्षेत्रफल और औसत उत्पादकता तथा मध्य प्रदेश राज्य एवं देश में प्रमुख फसलों की औसत उत्पादकता तालिका में दी गयी है।

खरीफ की मुख्य फसल बाजरा (160.20 हजार हेक्टेयर), अरहर (9.90 हजार हेक्टेयर) है और सबसे कम क्षेत्रफल में मूंग (1.90 हजार हेक्टेयर) की खेती की जा रही है। इसी प्रकार रबी मौसम में सबसे अधिक क्षेत्रफल में ली जाने वाली फसलें सरसों (345.22 हजार हे.), गेहूं (323.44 हजार हे.) और चना (49.50 हजार हे.) हैं लेकिन इन सभी फसलों की औसत उत्पादकता जिले, राज्य एवं राष्ट्रीय स्तर के वैज्ञानिक अनुसंधान द्वारा अनुसंशित फसलों की

क्र.	फसल का नाम	क्षेत्रफल ('000" हे.)	फसलों की अनुसंशित उत्पादकता (कि.ग्रा./हे.)	जिले की औसत उत्पादकता (कि.ग्रा./हे.)	म.प्र. राज्य की औसत उत्पादकता (कि.ग्रा./हे.)	भारत की औसत उत्पादकता (कि.ग्रा./हे.)
1	बाजरा	160.20	2800	2441	2315	1231
2	धान	3.60	5100	4004	2628	2576
3	अरहर	9.90	2000	1310	1105	966
4	मूंग	1.90	1235	755	275	467
5	उड़द	4.40	1062	845	553	653
6	सरसों	345.22	2200	1999	1079	1410
7	गेंहूँ	323.44	5000	4528	3115	3368
8	चना	49.50	2200	2060	1115	1056

प्रक्षेत्र परीक्षण एवं कृषक प्लाट के अन्तर्गत तकनीक एवं उपज का विवरण :

क्र.	फसल का नाम	खेत परीक्षण के लिए कृषकों की संख्या	तकनीकी समावेश	परीक्षण प्लाट की उपज (क्विंटल प्रति हेक्टेयर)	कृषक प्लाट की उपज (क्विंटल प्रति हेक्टेयर)	उपज में प्रतिशत
	सघन कृषि प्रणाली					
1	मूंग	50	उन्नतषील किस्म टी.जे.एम. 03	9.39	7.15	31.32
2	सोयाबीन	07	जे. एस. 95–60	20.33	18.6	9.3
3	उर्द	38	पी.यू. –31	11.2	9.76	14.75
4	बाजरा	180	कतार से बुवाई	29.6	24.7	19.83
	जलवायु प्रतिरोधक्षमतापूर्ण किस्में					
1	अरहर	75	पी.ए.–291	17.9	15	19.33
	अरहर फसल में उकठा प्रबंधन					
1	मक्का	04	हाइब्रिड मैजे–3797	50.38	43.7	15.28
2	ग्वार	38	एच.जी.– 563	16.5	12.5	32
	बाजरा–गेहूं एकल फसल प्रणाली में नयी फसल					
1	अरहर	14	• बीजोपचार : थायरम 3 ग्राम/किलोग्राम बीज • राइजोबियम 5 एम. एल/किलोग्राम बीज • कार्बेन्डाजिम 2.5 ग्राम/लीटर पानी का घोल बनाकर खड़ी फसल में दो छिड़काव	16.44	12.88	27.33
	समन्वित खाद प्रबंधन					
1	धान	70	वर्मी कम्पोस्ट 10 क्विटंल एकड़ एज़ोस्पिरीलियम 5 मि.ली./ किलो ग्राम बीज एन.पी.के. 12::32:16 65 किलोग्राम/एकड़	52.73	49.21	9.37
	सरसों के खेत में बरसीम फसल की रिले कापिंग					
1	बरसीम	12	बी.बी. – 02	5.42	4.7	15.31
	एकीकृत कीट प्रबंधन					
1	चना	127	एन.एस.के.ई. 1200 पी.पी.एम. 1.5 लीटर/हेक्टेयर। 7–7 दिन के अंतराल से दो छिड़काव करें फेरोमोन ट्रैप 10–15 प्रति हेक्टेयर बर्ड पर्चेस 50/हेक्टेयर	23.25	18.6	25
	सरसों में तना गलन रोग का नियंत्रण					
1	सरसों	50	उन्नतशील किस्म :– ऐन.आर.सी.एच.बी. 101 गहरी जुताई फसल चक्र मैकोजेब कोर्बेन्डाजिम 2 ग्राम /लीटर पानी	23.	18.92	24

आर्थिक विष्लेषण

सघन कृषि प्रणाली

क.	फसल का नाम	परीक्षण प्लाट				कृषक प्लाट			
		कुल लागत रूपये / हेक्टेयर	सकल आय रूपये / हेक्टेयर	शुद्ध आय रूपये / हेक्टेयर	बी सी अनुपात	कुल लागत रूपये / हेक्टेयर	सकल आय रूपये / हेक्टेयर	शुद्ध आय रूपये / हेक्टेयर	बी सी आय अनुपात
1	मूंग	23.350	69.529	46.179	2.97	20.850	52.926	32.076	2.53
2	सोयाबीन	29.965	80.973	51.008	2.70	27.660	7.ए214	46.550	2.68
3	उर्द	23.133	64.424	44.291	2.91	21.330	40.694	19.364	1.90
4	बाजरा	22.640	69.901	47.261	3.08	21.250	58.330	37.080	2.74

औसत उत्पादकता से बहुत कम (लगभग 30 प्रतिशत) है।

आंचलिक अनुसंधान केन्द्र, मुरैना के वैज्ञानिकों ने जिले के कृषकों से चर्चा उपरान्त मुख्य फसलों की उत्पादकता बढ़ाने एवं नयी फसल पद्धतियों का भी कृषकों के खेतों पर परीक्षण किया है। जिसमें सघन कृषि प्रणाली अन्तर्गत मूंग (टी.जे.एम 03), सोयाबीन (जे.एस. 95–60), उड़द (पी.यू. 31) एवं बाजरा कतार विधि से लगवाया गया। जिसका मुख्य उद्देश्य फसलों की उत्पादकता को बढ़ाना और कृषकों की आय में वृद्धि करना है। कृषक जलवायु परिवर्तन के कारण खेती में काफी जोखिम उठा रहे हैं और फसलों एवं किस्मों का सही चयन न करने के कारण उन्हें काफी नुकसान का सामना करना पड़ रहा है। इस दृष्टि से अरहर की कम अवधि की किस्म का चयन किया गया और बाजरा–गेहूं फसल पद्धति में बदलाव कर नयी फसल पद्धति मक्का–गेहूं या ग्वार–गेहूं पद्धति को अध्ययन हेतु चयन किया गया। अरहर की खेती में उकठा की मुख्य समस्या के प्रबंधन, धान में समन्वित खाद प्रबंधन, सरसों में बरसीम की रिले फसल पद्धति, चना में एकीकृत कीट प्रबंधन और सरसों में तना गलन रोग प्रबंधन पर एकीकृत रोग प्रबंधन का अध्ययन किया गया है जिसकी विस्तृत जानकारी दी जा रही है।

सघन कृषि प्रणाली के परिणामों के अन्तर्गत परीक्षण प्लाट की उपज में वृद्धि, कृषक प्लाट की उपज की तुलना में मूंग में 31 प्रतिशत, सोयाबीन में 9 प्रतिशत, उड़द में 15 प्रतिशत तथा बाजरा में 20 प्रतिशत तक दर्ज की गयी है। इसी प्रकार लाभ–व्यय (बी.सी.) परीक्षण प्लाट में मूंग का 2.97, सोयाबीन का 2.70, उड़द का 2.91 एवं बाजरा का 3.08 रहा है। जबकि कृषक प्लाट का लाभ–व्यय अनुपात मूंग 2.53, सोयाबीन 2.68, उड़द 1.90, एवं बाजरा 2.74 तक प्राप्त हुआ है। अर्थात् सघन कृषि प्रणाली से परीक्षण करने से कृषकों को अधिक लाभ प्राप्त हुआ।

जलवायु प्रतिरोध क्षमतापूर्ण अरहर की किस्में पी.ए.–291 शीघ्र

जलवायु प्रतिरोधक्षमतापूर्ण किस्में

क.	फसल का नाम	परीक्षण प्लाट				कृषक प्लाट			
		कुल लागत रूपये / हेक्टेयर	सकल आय रूपये / हेक्टेयर	शुद्ध आय रूपये / हेक्टेयर	बी. सी. अनुपात	कुल लागत रूपये / हेक्टेयर	सकल आय रूपये / हेक्टेयर	शुद्ध आय रूपये / हेक्टेयर	बी सी अनुपात
1	अरहर	30.730	108.607	77.877	3.58	29.990	91.013	61.023	3.03

बाजरा–गेहूं एकल फसल प्रणाली में नयी फसल लेना

क.	फसल का नाम	परीक्षण प्लाट				कृषक प्लाट			
		कुल लागत रूपये / हेक्टेयर	सकल आय रूपये / हेक्टेयर	शुद्ध आय रूपये / हेक्टेयर	बी सी अनुपात	कुल लागत का रूपये / हेक्टेयर	सकल आय रूपये / हेक्टेयर	शुद्ध आय रूपये / हेक्टयर	बी सी अनुपात
1	मक्का	27,960	98,973	71,013	3.56	25,060	84,508	59,448	3.37
2	ग्वार	25,180	69,281	44,101	2.75	23,690	52,785	26,690	2.21

अरहर फसल में उकठा प्रबंधन

क.	फ़सल का नाम	परीक्षण प्लाट				कृषक प्लाट			
		कुल लागत रूपये / हेक्टेयर	सकल आय रूपये / हेक्टेयर	शुद्ध आय रूपये / हेक्टेयर	बी सी अनुपात	कुल लागत रूपये / हेक्टेयर	सकल आय रूपये / हेक्टेयर	शुद्ध आय रूपये / हेक्टेयर	बी सी अनुपात
1	अरहर	33,850	100,382	66,532	2.96	29,225	78,644	49,419	2.69

पकने वाली किस्म है इसकी कटाई के बाद गेहूँ की फसल लगायी गयी थी। अरहर के परीक्षण प्लाट (17.90 क्वि./हे.) की उपज में कृषक प्लाट (15.00 क्वि./हे.) की तुलना में 19.33 प्रतिशत वृद्धि हुयी थी। इसी प्रकार परीक्षण प्लाट का लाभ–व्यय अनुपात 3.58 रहा है। अतः यह परीक्षण ज्यादा लाभकारी सिद्ध हुआ।

तालिका में मक्का और ग्वार की आय और आर्थिक विश्लेषण की गणना की गयी है। मक्का संकर किस्म 3797 की परीक्षण प्लाट की उपज, कृषक प्लाट की उपज से 15.28 प्रतिशत अधिक रही इसी प्रकार ग्वार की उपज में 32 प्रतिशत तक वृद्धि दर्ज की गयी तथा मक्का से शुद्ध आय 71013 रू. प्रति हे. प्राप्त हुयी है। जबकि कृषक प्लाट में मक्का से शुद्ध आय 59448 रू. प्रति हे. रही अर्थात कृषक को मक्का–गेहूँ कृषि पद्धति ज्यादा लाभकारी रही है।

अरहर फसल की मुख्य समस्या को ध्यान में रखते हुये उकठा रोग प्रबंधन पर फफूंदनाशक दवाओं के कई अवस्था में परीक्षण किये गये। जिससे परीक्षण प्लाट की औसत उपज (16.44 क्वि./हे.) कृषक प्लाट (12.88 क्वि./हे.) से 27.33 प्रतिशत अधिक प्राप्त हुयी है। इसी प्रकार लाभ–व्यय अनुपात परीक्षण प्लाट में 2.96 और कृषक प्लाट में 2.69 रहा है।

धान में समन्वित खाद प्रबंधन के अन्तर्गत वर्मी कम्पोस्ट, एजोस्पिलियम एवं एन.पी.के. (12:32:16) का परीक्षण किया गया। जिससे परीक्षण प्लाट की आय कृषक प्लाट से 9.37 प्रतिशत अधिक रही है और **लाभ–व्यय का अनुपात परीक्षण प्लाट का 2.62 और कृषक प्लाट का 2.56 रहा है।**

कृषक प्रायः सरसों की फसल में रिले फसल में बरसीम की पुरानी किस्म की बुवाई करते हैं। वैज्ञानिकों द्वारा बरसीम की नई किस्म बी.बी. 2 का परीक्षण किया गया। जिसकी उपज के परिणाम

समन्वित खाद प्रबंधन

क.	फसल का नाम	परीक्षण प्लाट				कृषक प्लाट			
		कुल लागत रूपये / हेक्टेयर	सकल आय रूपये / हेक्टेयर	शुद्ध आय रूपये / हेक्टेयर	बी सी अनुपात	कुल लागत रूपये / हेक्टेयर	सकल आय रूपये / हेक्टेयर	शुद्ध आय रूपये / हेक्टेयर	बी सी अनुपात
1	धान	38,910	102,137	63,227	2.62	36,460	93,381	56,921	2.56

सरसों के खेत में बरसीम फसल की रिले क्रापिंग

क.	फ़सल का नाम	परीक्षण प्लाट				कृषक प्लाट			
		कुल लागत रूपये / हेक्टेयर	स्कल आय रूपये / हेक्टेयर	शुद्ध आय रूपये / हेक्टेयर	बी सी अनुपात	कुल लागत रूपये / हेक्टेयर	सकल आय रूपये / हेक्टेयर	शुद्ध आय रूपये / हेक्टेयर	बी सी अनुपात
1	बरसीम	20,690	64,156	43,466	3.1	19,670	55,328	35,658	2.81

एकीकृत कीट प्रबंधन

क.	फसल लागत रूपये / हेक्टेयर	परीक्षण प्लाट				कृषक प्लाट			
		कुल लागत रूपये / हेक्टेयर	सकल आय रूपये / हेक्टेयर	शुद्ध आय रूपये / हेक्टेयर	बी सी अनुपात	कुल लागत रूपये / हेक्टेयर	सकल आय रूपये / हेक्टेयर	शुद्ध आय रूपये / हेक्टेयर	बी सी अनुपात
1.	चना	29,250	1,18,925	89,675	4.06	27,900	94,543	66,643	3.38

सरसों में तना गलन रोग का नियंत्रण

क्र.	फ़सल का नाम	परीक्षण प्लाट				कृषक प्लाट			
		कुल लागत रूपये/ हेक्टेयर	सकल आय रूपये/ हेक्टेयर	शुद्ध आय रूपये/ हेक्टेयर	बी सी अनुपात	कुल लागत रूपये/ हैक्टेयर	सकल आय रूपये/ हेक्टेयर	शुद्ध आय रूपये/ हेक्टेयर	बी सी अनुपात
1	सरसों	31,270	1,09,438	78,168	3.62	28,000	88,223	60,223	3.15

नई किस्म की तुलना में पुरानी किस्म से 13.31 प्रतिशत अधिक प्राप्त हुए हैं। इस फसल में लागत भी कम आती है अर्थात लाभ–व्यय अनुपात परीक्षण प्लाट का 3.10 और कृषक परीक्षण का 2.81 रहा है।

तालिका में चना फसल में एकीकृत कीट प्रबंधन के अन्तर्गत कई तकनीकी परीक्षण किये गये। जिससे चना के परीक्षण प्लाट (23. 25 क्विं/हे.) की उपज, कृषक प्लाट (18.60 क्विं./हे.) से 25 प्रतिशत अधिक रही है। इसी प्रकार लाभ–व्यय का अनुपात, 4.06 परीक्षण प्लाट का और 3.38 कृषक प्लाट का प्राप्त हुआ है।

तालिका में सरसों के तना गलन बीमारी का समन्वित प्रबंधन अपनाने पर परीक्षण प्लाट की उपज (23.46 क्विं/हे.) कृषक प्लाट (18.92 क्विं/हे.) की उपज से 24 प्रतिशत अधिक रही। रोग के उचित प्रबंधन से सरसों की खेती से शुद्ध आय 78168 रू./हे. परीक्षण प्लाट से प्राप्त हुयी जबकि 60,223 रू./हे. कृषक परीक्षण प्लाट से प्राप्त हुई।

वैज्ञानिकों द्वारा कृषकों के खेतों पर अपनायी जा रही फसल पद्धति में आंशिक परिवर्तन और उन्नत तकनीक का समावेश किया गया। जिससे कृषक पद्धति की तुलना में उपज में 15 से 32 प्रतिशत तक वृद्धि दर्ज की गयी। इसी प्रकार शुद्ध लाभ भी 10.000 से 20. 000 रू. प्रति हे. तक अधिक प्राप्त हुआ है। कृषकों को उक्त परीक्षण से उन्नत किस्मों, उर्वरकों की मात्रा का ज्ञान एवं रोग–कीट प्रबंधन के अन्तर्गत एकीकृत कीट प्रबंधन के विभिन्न तकनीकी पहलुओं की जानकारी प्राप्त हुई। जिससे निश्चित ही आने वाले समय में यह तकनीक कृषकों की आय दुगुनी करने में मद्दगार सिद्ध होगी।

पशुओं में गलघोटू रोग

डॉ सूदीप सोलंकी, सहायक आचार्य (वेटनरी माईकोबाईलोजी),
डॉ कमल पुरोहित, सहायक आचार्य (वेटनरी पेथोलोजी),
पशुचिकित्सा एवं पशु विज्ञान महाविद्यालय, नवानिया,
वल्लभनगर, उदयपुर - राजस्थान

गलघोटू रोग जीवाणुओं द्वारा फैलने वाला एक अत्यंत भयानक संक्रामक रोग है। गाय तथा भैंस प्रजाति के पशु प्रतिवर्ष इस रोग की चपेट में आकर मरते हैं। जुगाली करने वाले पशु और विशेषकर भैंसों पर इसका प्रकोप अत्याधिक होता है। यह रोग कभी–कभी इतने भयंकर रूप से फैलता है कि एक साथ सैकडों पशु बीमार हो जाते हैं। कमजोर एवं युवावस्था के पशुओं में यह रोग अतिशीघ्र फैलता है तथा रोगग्रस्त पशु मर जाते हैं। यह रोग बरसात से पूर्व प्रारंभ होता है। आमतौर पर एक से तीन दिन में इसके लक्षण प्रकट हो जाते हैं।

लक्षण

पशुओं में इस रोग की तीन अवस्थाएं होती हैं।

- पशु का तापमान 104 से 108 डिग्री फारेनहाइट पहुंच जाता है तथा पशु सुस्त हो जाता है। पशु खाना–पीना छोड़ देता है उसके कान नीचे लटके रहते हैं। पशु को दस्त लग जाती है। कभी–कभी रोग की तीव्रता के कारण 6 से 8 घंटे में पशु की मृत्यु हो जाती है।

- कुछ पशुओं में रोग की दूसरी अवस्था या लक्षण देखने को मिलते हैं। पशु की जीभ पर सूजन आ जाती है तथा बाहर निकली रहती है। जीभ एवं गले में सूजन बढ़ने के कारण पशु को सांस लेने में बहुत कठिनाई होती है जिसके कारण पशु के सांस लेते समय घुर्र–घुर्र की आवाज आती है। इसलिए इस रोग को गलघोटू या घोटुआ बुखार कहते हैं। रोग की अवस्था में पशु 12 से 36 घंटे में दम घुटने से मर जाता है।
- इस रोग की एक अन्य अवस्था में न्यूमोनिया जैसे लक्षण प्रकट होते हैं। पशु सांस जल्दी–जल्दी लेता है व खांसता है। उसकी नाक से श्वेत रंग का स्त्राव निकलता है जो रस्सी की तरह नाक से लटकता हुआ प्रतीत होता है। इस अवस्था में 6 से 7 दिन के भीतर ही पशु की मृत्यु हो जाती है।

रोग का फैलना

यह रोग घर पर अथवा चराई के स्थल पर हो सकता है।

रोगग्रस्त पशु जब चरने जाता है तो उसके मलमूत्र आदि से घास दूषित हो जाती है। जिस कारण एक स्वस्थ पशु तक दूषित घास द्वारा रोग के कीटाणु फैल जाते हैं। पशुओं का पारस्परिक सम्पर्क, दूषित आहार, परिचारक तथा दूषित व नम जलवायु भी रोग को फैलाने में सहायक होते हैं।

इलाज

गलघोटू रोग बहुत तेजी से महामारी के रूप में फैलता है। एक बार लक्षण प्रकट होने के बाद इसका उपचार कारगर नहीं हो पाता है। कई बार पशु की मृत्यु हो जाती है इसलिए सबसे उपयुक्त यह है कि बरसात से पूर्व अपने पशुओं में रोग प्रतिरोधक टीका लगाएं, जिससे पशुओं को इस भयंकर रोग से बचाया जा सके। एंटीसीरम यदि उपलब्ध हो तो अन्तः शिरा इंजेक्शन देने से काफी लाभ मिलता है।

सल्फाडिमीडिन सोडियम नामक दवा के साथ पशु को एंटीसीरम देने से पशुओं का बचाव हो सकता है लेकिन यह महंगा इलाज है। अतः परहेज का टीका लगवाना ही पशुपालक के हित में है। कुछ अन्य एंटीबायोटिक दवाईयां भी इस रोग के इलाज में उपयोग की जाती है।

बचाव व रोकथाम

बचाव के लिए प्रतिवर्ष बरसात के मौसम से पूर्व पशुओं को सामूहिक रूप से गलघोटू के टीके लगवाने चाहिए। पशुपालन विभाग के द्वारा सामूहिक टीकाकरण का प्रबंध किया जाता है। ये टीके पशु चिकित्सक से सम्पर्क करके लगवाएं जाते हैं। इस टीकाकरण से पशु में 6 माह तक रोग रोकने की क्षमता बनी रहती है।

रोगी पशु के सम्पर्क में आए सभी पशुओं को एंटीसीरम का इंजेक्शन लगवाना चाहिए। एंटीसीरम देने के 15 दिवस उपरान्त पशुओं में प्रतिरोधक टीका लगवाने से अधिक लाभ होता है।

इस संक्रामक रोग की रोकथाम के लिए मुख्यतः निम्न बातों का ध्यान रखना आवश्यक है–

- पशुओं को प्रतिवर्ष बरसात से पूर्व गलघोटू का प्रतिरोधक टीका लगवाएं।
- रोगी पशुओं को स्वस्थ पशुओं से अलग रखना चाहिए।
- रोगग्रस्त पशुओं के स्थान व मलमूत्र की सफाई फिनायल से करनी चाहिए।
- मश्त पशुओं को जला देना चाहिए अथवा उनको गढडा खोदकर गाड़ देना चाहिए ताकि रोग फैल न सकें।
- रोग फैलने की सूचना पशु चिकित्सालय में देनी चाहिए।

स्वरोजगार के लिए एक्वेरियम में सजावटी मछलियों की रंग–बिरंगी प्रजातियाँ

मोती लाल मीणा, वरिष्ठ वैज्ञानिक, इप्सिता विश्वास, विषय विशेषज्ञ (मत्स्य विज्ञान) एवं मधु सुदन कुन्डू, निदेशक (प्रसार शिक्षा),

कृषि विज्ञान केन्द्र, कृषि विज्ञान केन्द्र, तुर्की, मुजफ्फरपुर (बिहार) 843121, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय, पूसा (बिहार) 848125

रंग–बिरंगी सजावटी मछलियों को एक्वेरियम में रखने का प्रचलन काफी प्राचीन है। अभिलेख के अनुसार आदिकाल में मेसोपोटामिया के लोग जिन्हें सुमेरियन्स कहा जाता था, लगभग 4500 वर्ष पहले से मछलियों को पालने के लिए तालाबों का प्रयोग करते थे। अन्य प्रारंभिक मानव सभ्यता में एक्वेरियम रखने का शौक एशिया के देश, चीन, जापान एवं मिस्र के लोगों में होने का उल्लेख है। प्राचीन समय में एक्वेरियम को रखने का उद्देश्य मनोरंजन के साथ इनका प्रजनन करवाकर उन्हें भोजन के रूप में उपयोग करना भी होता था। चीन में छोटे–छोटे पात्रों में अलंकारिक मछलियों को रखकर उनका प्रजनन कराने की विधि का विकास किया गया, इसका एक प्रमुख उदाहरण गोल्ड फिश है। एक्वेरियम शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम फिलिप गूज (1810–88) नामक ब्रिटिश वैज्ञानिक ने अपने कार्यों में किया था। विश्व का प्रथम सार्वजनिक एक्वेरियम वर्ष 1853 में रीजेन्ट पार्क, लंदन में खोला गया, उसके बाद बर्लिन एवं पेरिस में इस तरह के एक्वेरियम बनाये गए। वर्तमान समय में यह एक रूचिकर एवं सौंदर्यपरक गतिविधि के रूप में स्थापित हो रहा है और ज्यादातर लोगों का रूझान एक्वेरियम की ओर बढ़ रहा है।

गोल्ड फिश (*कारासियस औराटस*) साइप्रिनीडी परिवार के साइप्रिनीफोरमीस क्रम की मीठे पानी में पाई जाने वाली मछली है। यह सभी मछलियों में से सर्वप्रथम सबसे अधिक एक्वेरियम में पाली जाने वाली मछली है। गोल्ड फिश, कार्प परिवार की एक अपेक्षाकृत छोटी सदस्य है। इसमें कई कार्प और क्रूसियान कार्प भी सम्मिलित हैं। यह कम रंगीन कार्प मछली का पालतू संस्करण है, जो कि पूर्व एशिया की मूल निवासी है। गोल्ड फिश पहली बार चीन में एक हजार वर्ष पूर्व से अधिक पहले एक्वेरियम में रखी गयी थी और इसे कई अलग–अलग नस्लों में विकसित किया गया। गोल्ड फिश की प्रजातियों के आकार में काफी विभिन्नता है। इन्हें शरीर के आकार, पंख विन्यास और रंग (सफेद, पीला, नारंगी, लाल, भूरा और काला) के विभिन्न संयोजन में जाना जाता है। कार्प मछली का सामान्य रूप से भूरे और चांदी रंगों की प्रजातियों से कुछ भिन्न रंगों जैसे लाल, नारंगी और पीले रंग की प्रजातियों का आनुवांशिक प्रजनन किया गया। गोल्ड फिश ने सर्वप्रथम वर्ष 1850 के दौरान उत्तरी अमेरिका में प्रवेश किया और बहुत तेजी से संयुक्त राज्य अमेरिका में भी लोकप्रिय हो गयी। वर्ष 1603 के दौरान गोल्ड फिश ने जापान में प्रवेश किया, जहाँ रूयुकिन और टोसाकिन की किस्में विकसित की गई। वर्ष 1611 में इसने पुर्तगाल में भी प्रवेश किया और वहां से यूरोप के अन्य भागों में भी लोकप्रिय हो गयी। गोल्ड फिश की प्रजातियाँ सदियों से चयनात्मक प्रजनन के कारण गोल्डन रंग से हटाकर कई रंगों और विभिन्न रूपों में विकसित की गईं। इसके कुछ संस्करणों में पंख, आंख विन्यास और अलग शरीर के आकार में भिन्नता पाई गई है। वर्तमान में चीन में इसकी 300 किस्मों की मान्यता प्राप्त नस्ल उपलब्ध हैं। गोल्ड फिश के विशाल समुदाय से उत्पन्न मुख्य किस्मों की जानकारी यहां दी जा रही है।

सजावटी मछली पालन

मछली की प्रजाति व पहचान लक्षण

सिप्रिनिडाई: साईप्रिनीडाई के परिवार में एक ताजे पानी की मछली हैं। यह पालतू बनाए जाने वाली सबसे पहली मछली है और सबसे अधिक रखे जाने वाली मछली है। यह कार्प परिवार का एक छोटा सदस्य है। सुनहरी मछली गहरे–ग्रे/जैतूनी/भूरे कार्प का एक पालतू संस्करण है, जो पूर्वी एशिया के मूल निवासी हैं।

प्रजाति का चित्र

डवार्फ गौरामी: यह सजावटी मछली की सामान्य रूप से एक्वेरीयम में पाली जाने वाली प्रजाति है। जो दिखने में अति सुन्दर लगती है। इसकी लम्बाई 6 सें.मी. होती है। इसका रंग चमकीला गहरा लाल और नीला होता है। किसिंग गौरामी व किसिंग मछली का रंग हल्का हरा और हल्का गुलाबी होता है। जो बहुत ही आकर्षक लगती है।

मौली: इसे सिम्मी नाम से भी जाना जाता है। यह प्रजाति ट्रोपिकल मोली, पीली मोली, सिलवर मोली, मल्टी कलर मोली, स्नोंव्हाइट रंग में पायी जाती है। इनका मुँह हल्का लम्बा होता है, तथा इस मछली के पंख फैले हुये होते है। यह देखने में अति सुन्दर और आकर्षक लगती है। इसकी लंबाई 5 सें.मी तक होती है।

टाईगर बारब्स: यह प्रजाति 7–10 सें.मी. लम्बी तथा 3 से 4 सें. मी. चौड़ाई वाली होती है। इनका रंग लिवर तथा भूरा पीले रंग का शरीर होता है जिस पर चार काली धारियाँ पायी जाती है जिससे ये बहुत ही आकर्षक लगती हैं। यह सामान्यतः मीठे पानी में ही पाली जा सकती है। इसके पंखों का रंग लाल होता है जो अति सुन्दर लगते हैं।

गुप्पी मछली: इस प्रजाति की सजावटी मछलियों में नर की लम्बाई 1.5 से 3.5 सें.मी. तथा मादा के शरीर की लंबाई लगभग 3 से 6 सें.मी. तक होती है। इनका रंग सफेद, पीला, सिल्वर, काला इत्यादि होता है। इनके पंखों पर काले और सिल्वर रंग की धारियाँ पायी जाती हैं।

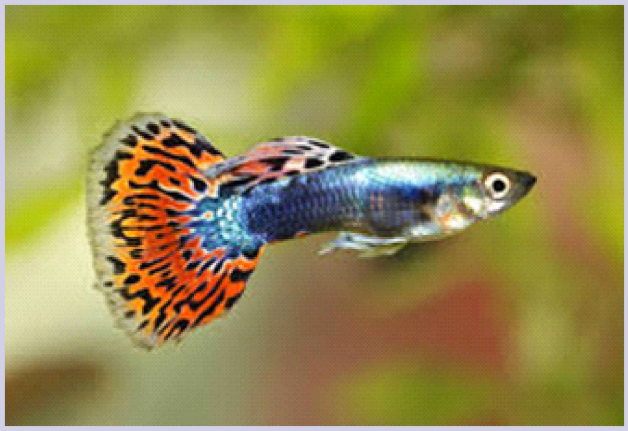

सिलिडसः इस प्रजाति की सजावटी मछलियाँ प्रायः सभी जगह पर पायी जाती हैं। यह एक्वेरियम में पाले जाने के लिए सबसे उपयुक्त मानी जाती हैं। यह 7.0 से 7.5 पीएच वाले पानी में आसानी से जीवित रह सकती हैं। इनकी पीठ पर पंख फैले हुए होते हैं तथा शरीर पर काले रंग की धारियाँ पायी जाती हैं।

सजावटी मछली पालने के लिए कुछ महत्वपूर्ण निर्देशः

- यदि आप गोल्ड फिश को एक या दो दिन खाना देना भूल जाते हैं, तो भी कोई नुकसान नहीं होगा।
- यदि गोल्ड फिश देखने में अस्वस्थ लग रही है तो पानी को जल्द से जल्द साफ कर देना चाहिए।
- इसकी नियमित रूप से देखभाल करनी चाहिए।
- यदि समस्या और भी बढ़ जाती है तो विशेषज्ञों तथा वैज्ञानिकों या नजदीकी दुकानदारों का सुझाव लेना चाहिए।
- गोल्ड फिश विविध प्रकार के आहार की प्रेमी है। इसके मुख्य आहार को भिन्न करने के लिए विभिन्न आकार के मिश्रण का खाद्य पदार्थ देने की कोशिश करें।
- सप्ताह में दो बार उच्च गुणवत्ता वाले पील्लेट आहार/सूखे खाद्य पदार्थ के रूप में दें।
- मछली टैंक को नियमित रूप से साफ रखें।
- स्वस्थ गोल्ड फिश का स्केल चमकीला तथा पृष्ठीय पंख ऊपर की ओर होता है। गोल्ड फिश खरीदने से पहले देखकर सुनिश्चित कर लें कि मछली चमकीली और प्रसन्न मुद्रा में है या नहीं।
- गोल्ड फिश कभी–कभी अपने मुंह में पत्थर रख लेती है, लेकिन वे प्रायः उगल देती हैं।
- दिन में 1–2 बार खाना दे देना चाहिए, लेकिन उन्हें पेटभर से ज्यादा आहार नहीं देना चाहिए।
- हमेशा गोल्ड फिश के विभिन्न प्रकार के लक्षणों पर ध्यान देना चाहिए।
- गोल्ड फिश लगभग सभी खाद्य पदार्थों को खाने की कोशिश करती है। इसे फिश टैंक में देखकर ही अनुभव किया जा सकता है।

सजावटी मछली पालन से लाभः

- सजावटी मछली पालन से प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि के साथ रोजगार भी मिलता है।
- सजावटी मछली पालन से मध्यम वर्ग के युवाओं को रोजगार मिलता है।
- मेट्रो शहरों में एकल परिवार की आय में वृद्धि होती है।
- भूमिहीन बेरोजगार युवाओं के लिए उत्तम रोजगार का साधन
- कम समय में अधिक लाभ कमा सकते हैं।

लाभ लागतः

ग्रामीण क्षेत्र में स्वरोजगार के लिए इसे शुरू किया जा सकता है। इसके लिए कम स्थान (500–1000 वर्ग फुट) में भी एक इकाई तैयार की जा सकती है। लगभग 65000 रूपये के निवेश से यह कारोबार आरंभ किया जा सकता है। सजावटी मछलियों से एक वर्ष में लगभग 150000 रूपये का शुद्ध लाभ कमा सकते हैं।

Regd. No. 14249/57/RNI

प्रकाशन एकक, कृषि सूचना इकाई, विस्तार निदेशालय, कृषि विस्तार सदन, पूसा, नई दिल्ली – 110012